NEXT IAS

AANKALAN

UPPSC MAINS 2024 (GS-I) (PAPER III)

TEST 3

1. "भारत में लौह युग की शुरुआत ने बसावट के स्वरूपों, सामाजिक-राजनीतिक संगठनों और आर्थिक संरचनाओं में एक परिवर्तनकारी बदलाव लाया।" विवेचना कीजिए।

भारतीय उपमहाद्वीप में लौह युग की शुरुआत लगभग 1200 ईसा पूर्व में लौह उपकरणों और हथियारों के उपयोग के साथ हुई, जो ताम्रपाषाण युग और कांस्य युग से एक तकनीकी छलांग थी। इसने मानव सभ्यता को मौलिक रूप से बदल दिया और प्रारंभिक ऐतिहासिक भारत को एक संरचित सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली में ढाल दिया।

स्थायी बस्तियों और सामाजिक-राजनीतिक संगठन में रूपांतरणकारी बदलाव

1. **कृषि विस्तार और स्थायी बस्तियाँ**

   हल और दरांती जैसे लौह उपकरणों ने व्यापक रूप से वनों की सफाई और गहराई से जुताई को संभव बनाया। इसने नदी घाटियों से परे ऊँचाई वाले क्षेत्रों में भी स्थायी कृषि को संभव किया, जिसके परिणामस्वरूप पेंटेड ग्रे वेयर (PGW) और नॉर्दर्न ब्लैक पॉलिश्ड वेयर (NBPW) जैसी संस्कृतियों की स्थायी बस्तियाँ उभरीं, जो बड़े गाँवों और शहरी केंद्रों की नींव बनीं।

2. **शहरी केंद्रों और जनपदों का उदय**

   लौह तकनीक ने अधिशेष उत्पादन को संभव किया, जिससे काशी, उज्जैन और तक्षशिला जैसे शहरी केंद्रों का विकास हुआ। ये केंद्र जनपदों (छोटे राज्यों) में परिवर्तित हुए, जिससे सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य आदिवासी समुदायों से संगठित प्रादेशिक राज्यों की ओर स्थानांतरित हुआ, जिनकी सीमाएँ और राजनीतिक नेतृत्व परिभाषित था।

3. **सामाजिक श्रेणियों का स्तरीकरण**

   लौह युग में सामाजिक स्तरीकरण में वृद्धि देखी गई। अधिशेष अर्थव्यवस्था के कारण व्यवसायिक विविधीकरण हुआ, जिससे वर्ण व्यवस्था मजबूत हुई, जिसमें योद्धाओं (क्षत्रिय), पुरोहितों (ब्राह्मण), व्यापारियों (वैश्य) और श्रमिकों (शूद्र) को विशिष्ट भूमिकाएँ सौंपी गईं, जिससे सामाजिक पदानुक्रम और राजनीतिक नियंत्रण की व्यवस्थाएँ संस्थागत रूप ले पाईं।

4. **महाजनपदों और राज्यों का उद्भव**

   ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी तक लौह तकनीक ने सैन्य विस्तार और प्रशासनिक एकीकरण को सक्षम बनाया। मगध, कोसल और अवंति जैसे सोलह महाजनपद उभरे, जिनकी विशेषताएँ संगठित कर व्यवस्था, स्थायी सेनाएँ और दुर्गीकृत राजधानियाँ थीं, जिसने मौर्य जैसे बड़े साम्राज्यों की नींव रखी।

5. **राज्य तंत्र का विकास**

   प्रादेशिक राज्यों के विकास ने संगठित शासन की आवश्यकता उत्पन्न की। अमात्य (मंत्री), सेनापति (सेनाप्रमुख) और ग्रामिक (ग्राम प्रमुख) जैसे अधिकारी उभरे, जो नौकरशाही संस्थाओं को दर्शाते हैं। यह शासन परिवर्तन बढ़ती जनसंख्या के प्रबंधन और राज्य की आय को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने में सहायक रहा।

6. **योद्धा अभिजात वर्ग का उदय**

   तलवारों और भालों जैसे लौह हथियारों ने सैन्य क्षमताओं को बढ़ाया। क्षत्रिय वर्ग को प्रमुखता मिली, जिससे योद्धा अभिजात वर्ग का राजनीतिक प्रभुत्व सुदृढ़ हुआ। सैन्य शक्ति राज्य निर्माण और अंतर-राज्यीय संघर्षों का प्रमुख आधार बन गई, जिससे राजनीतिक शक्ति-संतुलन में बदलाव आया।

आर्थिक संरचनाओं में रूपांतरणकारी बदलाव

1. **कृषि अधिशेष और आर्थिक विशेषज्ञता**

   उन्नत लौह उपकरणों के साथ कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और व्यवसायिक विशेषज्ञता संभव हुई। कारीगर, व्यापारी और वणिक जैसे नए आर्थिक वर्ग उभरकर सामने आए, जिससे अर्थव्यवस्था का आधार निर्वाह कृषि से आगे बढ़ा।

2. **व्यापार और वाणिज्य का विस्तार**

   लौह युग के शहरी केंद्र क्षेत्रीय और दीर्घ दूरी के व्यापार के केंद्र बन गए। गंगा के मैदानों, दक्कन और उत्तर-पश्चिम भारत को जोड़ने वाले मार्गों ने लौह वस्त्र, वस्त्र, अनाज और आभूषणों का आदान-प्रदान संभव किया। नदी मार्गों और स्थल मार्गों ने बाजार एकीकरण को बढ़ावा दिया।

3. **शिल्प विशेषज्ञता का उदय**

   लौह कारीगरी, मृद्भांड (NBPW), मनकों का निर्माण और वस्त्र बुनाई जैसे शिल्प फले-फूले। शहरी केंद्रों में विशिष्ट उत्पादन गतिविधियाँ प्रारंभिक औद्योगिक प्रक्रियाओं की ओर संकेत करती हैं। कारीगर संघों या "श्रेणियों" का उदय शिल्प की गुणवत्ता और मूल्य निर्धारण को नियंत्रित करने के लिए हुआ।

4. **मौद्रिक अर्थव्यवस्था का उदय**

   लौह युग में पंच-चिह्नित सिक्कों का प्रचलन वस्तु-विनिमय से मौद्रिक विनिमय की ओर संक्रमण को दर्शाता है। इससे बाजार आधारित लेन-देन, कर प्रणाली में नकद अथवा वस्तु के रूप में भुगतान, और आर्थिक संबंधों का मुद्रीकरण हुआ।

5. **संसाधनों और करों पर राज्य का नियंत्रण**

   राज्य ने लौह अयस्क खानों और वन उत्पादों सहित प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करना शुरू किया। "भाग" (कृषि कर) और "बलि" (कर अथवा भेंट) जैसे करों की नियमित वसूली से प्रशासन और सेना को वित्तीय सहायता मिली, जिससे आर्थिक केंद्रीकरण मजबूत हुआ।

6. **ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण**

   ग्रामीण उत्पादक खाद्यान्न, कच्चा माल और श्रम प्रदान करते थे, जबकि शहरी केंद्र तैयार वस्तुएँ, बाजार और प्रशासनिक सेवाएँ देते थे। यह ग्रामीण-शहरी परस्पर निर्भरता एक समेकित और जुड़ी हुई अर्थव्यवस्था को जन्म देती थी, जो राजनीतिक शक्ति को बनाए रखने में सहायक थी।

इस प्रकार, लौह युग एक निर्णायक मोड़ था जिसने भारत को शहरीकरण, राजनीतिक एकीकरण और आर्थिक विविधीकरण की दिशा में अग्रसर किया। इसने एक परिवर्तनकारी चरण की नींव रखी, जिसने समावेशी आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया, ग्रामीण-शहरी संतुलन स्थापित किया और संसाधनों के सतत प्रबंधन द्वारा एक लचीले और न्यायपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की ओर मार्ग प्रशस्त किया।

2. आधुनिक भारत और आज की दुनिया में महात्मा गांधी के विचारों और मूल्यों की प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।

महात्मा गांधी, जिन्हें राष्ट्रपिता के रूप में जाना जाता है, ने अपने जीवन दर्शन को सत्य (सत्य), अहिंसा (अहिंसा), सर्वोदय (सभी का कल्याण) और सत्याग्रह (अहिंसक प्रतिरोध) के आधार पर स्थापित किया। उनके आदर्श भारत के स्वतंत्रता संग्राम से परे जाकर समकालीन चुनौतियों से निपटने के लिए नैतिक, नैतिकतापूर्ण और रणनीतिक मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में आज भी प्रासंगिक हैं।

समकालीन भारत और विश्व में महात्मा गांधी के विचारों और मूल्यों की प्रासंगिकता

1. **अहिंसा एक वैश्विक शांति रणनीति के रूप में**

   गांधी का अहिंसा का सिद्धांत आज के समय में संघर्ष समाधान के केंद्र में बना हुआ है, जैसा कि दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद विरोधी आंदोलन और अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन में देखा गया। यूक्रेन, फिलिस्तीन और म्यांमार जैसे संघर्ष-ग्रस्त क्षेत्रों में भी गांधीजी की पद्धतियाँ शांतिपूर्ण विरोध और वार्ता को प्रेरित करती हैं, जो हिंसक प्रतिक्रिया के बजाय शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को बढ़ावा देती हैं।

2. सत्याग्रह एक लोकतांत्रिक उपकरण के रूप में

गांधीजी का सत्याग्रह बलपूर्वक दबाव की अपेक्षा नैतिक अनुनय पर जोर देता है, तथा वैश्विक स्तर पर अहिंसक लोकतांत्रिक आंदोलनों को प्रेरित करता है। भारत में चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन और अन्ना हज़ारे का भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन गांधीवादी नागरिक अवज्ञा और शांतिपूर्ण प्रतिरोध के तरीके अपनाकर सामाजिक न्याय और नीति सुधार हासिल करने के उदाहरण हैं।

3. समावेशी अर्थव्यवस्था के लिए ट्रस्टीशिप मॉडल

गांधी का ट्रस्टीशिप दर्शन नैतिक संपत्ति वितरण को बढ़ावा देता है। कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (CSR) नीतियाँ, सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) और समावेशी पूँजीवाद इसी दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। टाटा समूह और इन्फोसिस फाउंडेशन जैसी कंपनियाँ अपने मुनाफे को सामाजिक कल्याण और पर्यावरणीय स्थिरता से जोड़कर गांधीवादी नैतिकता को अपनाती हैं।

4. ग्राम स्वराज और ग्रामीण आत्मनिर्भरता

गांधी का ग्राम स्वराज आत्मनिर्भर गाँवों को राष्ट्रीय विकास की नींव मानता है। दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना और आत्मनिर्भर भारत अभियान जैसे कार्यक्रम ग्रामीण उद्यमिता, कौशल विकास और पंचायती राज के माध्यम से स्थानीय शासन को बढ़ावा देते हैं, जिससे ग्रामीण-शहरी विभाजन को कम किया जा रहा है।

5. सादगी और सतत जीवनशैली

गांधी ने सादा जीवन और उच्च विचार का समर्थन किया। उनकी जीवनशैली न्यूनतमवाद और स्थिरता को बढ़ावा देती है, जो जलवायु परिवर्तन और उपभोक्तावाद जैसी चुनौतियों से निपटने में सहायक है। शून्य अपशिष्ट जीवन, धीमा फैशन और पर्यावरण-अनुकूल उत्पादन जैसे आधुनिक आंदोलन गांधीवादी मूल्यों से प्रेरणा लेते हैं।

6. धार्मिक सौहार्द का संवर्धन

गांधी द्वारा सांप्रदायिक सौहार्द पर दिया गया बल आज के धार्मिक ध्रुवीकरण से भरे भारत में अत्यंत प्रासंगिक है। उनका दर्शन अंतरधार्मिक संवाद और विविधता के सम्मान को बढ़ावा देता है, जो धर्मनिरपेक्षता और बंधुत्व जैसे संवैधानिक आदर्शों को सशक्त करता है, जो राष्ट्रीय एकता और सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक हैं।

7. हाशिए पर व्याप्त समुदायों का सशक्तिकरण

गांधी ने अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष किया और हरिजनों के उत्थान की वकालत की, जो आज सामाजिक न्याय की दिशा में हो रहे प्रयासों के साथ गूँजते हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम जैसी नीतियाँ तथा लिंग और जाति समानता के लिए चल रहे आंदोलन गांधीवादी समावेशी सामाजिक परिवर्तन के आदर्शों को प्रतिबिंबित करते हैं।

8. नैतिक नेतृत्व और सुशासन को बढ़ावा देना

गांधी का जीवन नैतिक नेतृत्व, सत्यनिष्ठा और सेवा-आधारित प्रशासन का प्रतीक है। समकालीन नैतिक संकटों और भ्रष्टाचार घोटालों के बीच गांधीवादी नैतिकता प्रशासकों को पारदर्शिता, जवाबदेही और लोक सेवा मूल्यों को बनाए रखने के लिए प्रेरित करती है, जो नागरिक चार्टर और सुशासन की परिकल्पना के अनुरूप है।

9. चरित्र निर्माण हेतु शिक्षा

गांधी ने 'नई तालीम' की वकालत की—जो कौशल, नैतिकता और सामुदायिक सेवा पर आधारित शिक्षा है। आज विश्व भर में नई शिक्षा नीतियाँ अनुभवात्मक अधिगम, व्यावसायिक प्रशिक्षण और मूल्य आधारित शिक्षा पर बल दे रही हैं, जिससे जिम्मेदार नागरिकों का निर्माण हो सके। यह गांधीवादी शैक्षिक दर्शन से मेल खाता है जो समग्र मानव विकास पर केंद्रित है।

10. गांधीवादी दर्शन की वैश्विक मान्यता

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गांधी जी की जयंती को अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जाता है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मंडेला और बराक ओबामा जैसे नेता गांधी के प्रभाव को सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर चुके हैं, जो मानवाधिकारों, लोकतंत्र और वैश्विक शांति निर्माण को बढ़ावा देने में गांधी की कालातीत प्रासंगिकता को पुनः पुष्ट करता है।

इस प्रकार, गांधीवादी मूल्य समकालीन सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिए एक कालातीत नैतिक दिशा सूचक प्रदान करते हैं। उनका जीवन-दर्शन उनके आदर्शों को संस्थागत रूप देने में निहित है, ताकि भारत और पूरी दुनिया शांति, न्याय और समावेशी विकास की दिशा में निरंतर आगे बढ़ती रहे, और 'सर्वोदय' अर्थात सभी के कल्याण की सच्ची भावना को बनाए रख सके।

3. भारतीय कला और साहित्य में गुप्तकाल के योगदान पर चर्चा कीजिए।

गुप्त काल (चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी) को भारतीय संस्कृति का "स्वर्ण युग" कहा जाता है, जो कला, वास्तुकला और साहित्य में अभूतपूर्व उपलब्धियों के लिए जाना जाता है। इस काल में सौंदर्यबोध और आध्यात्मिक गहराई का समन्वय हुआ, जिसने शास्त्रीय भारतीय कला की नींव रखी और दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में बाद की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया।

भारतीय कला में गुप्त काल का योगदान

1. **मंदिर वास्तुकला का विकास**

   गुप्त काल ने पत्थर और ईंट से बने संरचनात्मक मंदिर वास्तुकला की नींव रखी। देवगढ़ का दशावतार मंदिर और भितरगाँव मंदिर नागर शैली के उदाहरण हैं, जिनमें वक्राकार शिखर हैं। यह गुफा कटान से मुक्त खड़े मंदिरों की ओर एक परिवर्तन था, जिसने आने वाले युगों में भारतीय मंदिर वास्तुकला को प्रभावित किया।

2. **मूर्तिकला में प्रतीकात्मक पूर्णता**

   गुप्त मूर्तिकला ने आदर्श मानव आकृतियाँ प्राप्त कीं, जिनमें शांत भाव, सूक्ष्म विवरण और आध्यात्मिक गहराई होती थी। सारनाथ की बुद्ध की प्रतिमा गुप्त कला शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें चिकनी सतहें, संतुलित शरीर रचना और ध्यानमग्न मुद्राएँ हैं, जो बौद्ध, हिन्दू और जैन धर्मों की आध्यात्मिक भावना को दर्शाती हैं।

3. **भित्तिचित्र और फ्रेस्को चित्रकला परंपरा**

   अजन्ता गुफाओं (गुफा संख्या 16, 17, 19) में जातक कथाओं और राजदरबार के दृश्यों को दर्शाते हुए भित्तिचित्र और फ्रेस्को चित्रकला देखने को मिलती है। इन चित्रों में प्राकृतिक रंगों का उपयोग और भावनात्मक अभिव्यक्ति से युक्त मानव आकृतियाँ हैं, जो भारतीय दृश्य कथा परंपरा में मानक स्थापित करती हैं और दक्षिण-पूर्व एशियाई कला रूपों को प्रेरित करती हैं।

4. **मुद्रा कला के रूप में**

   गुप्त स्वर्ण मुद्राएँ, विशेष रूप से समुद्रगुप्त की, मुद्राशिल्प की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। इनमें सम्राटों को वीणा वादन, घुड़सवारी या धनुर्विद्या करते हुए दिखाया गया है, जो शाही कला संरक्षण को दर्शाती हैं और गुप्त साम्राज्य के राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य की झलक देती हैं।

5. **धातुकला में प्रगति**

   मेहरौली का लौह स्तंभ, जो चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में स्थापित हुआ था, धातुकला की उत्कृष्टता को दर्शाता है। इसका जंग प्रतिरोधी निर्माण और सूक्ष्म अभिलेख गुप्त युग की वैज्ञानिक और कलात्मक उपलब्धियों के प्रतीक हैं, जिन्होंने धातुकला और अभियांत्रिकी में आगे के विकास को प्रभावित किया।

6. **धार्मिक और लौकिक कला का समन्वय**

   इस काल की कलाकृतियाँ धार्मिक और लौकिक दोनों विषयों को समाहित करती हैं। विष्णु और शिव की मूर्तियों से लेकर दरबारी जीवन और प्रकृति दृश्यों तक, गुप्त कलाकारों ने जीवन के विविध पक्षों को दर्शाया, जिसमें अध्यात्म और यथार्थ का मेल है, जिससे भारत की सांस्कृतिक और कलात्मक पहचान समृद्ध हुई।

भारतीय साहित्य में गुप्त काल का योगदान

1. **शास्त्रीय संस्कृत को सांस्कृतिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा**

   गुप्त काल ने संस्कृत को प्रशासन, साहित्य और दर्शन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस भाषाई परिष्कार ने शास्त्रीय काव्य, नाटक और दार्शनिक ग्रंथों की रचना को संभव बनाया, जिसने आने वाले युगों के लिए साहित्यिक मानदंड स्थापित किए।

2. **कालिदास के साहित्यिक योगदान**

   कालिदास, गुप्त काल के महानतम संस्कृत कवि और नाटककार थे। उनकी कृतियाँ—*अभिज्ञान शाकुंतलम्*, *मेघदूतम्* और *रघुवंश*—कल्पनाशक्ति, काव्य सौंदर्य और सांस्कृतिक गहराई से भरपूर हैं। उनके साहित्य को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई, और यह विश्व साहित्य को प्रभावित करते हुए अनेक भाषाओं में अनूदित हुआ।

3. **संस्कृत में वैज्ञानिक साहित्य**

आर्यभट की *आर्यभटीय* और वराहमिहिर की *पंचसिद्धांतिका* जैसे ग्रंथ गुप्त काल के खगोलशास्त्र, गणित और ज्योतिष में योगदान को दर्शाते हैं। ये कृतियाँ संस्कृत को वैज्ञानिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्थापित करती हैं और इनके अनुवाद के माध्यम से इस ज्ञान ने इस्लामी और यूरोपीय दुनिया तक पहुँच बनाई।

4. **नाट्य कला में उत्कृष्टता और रंगमंच**

गुप्त साहित्य ने संस्कृत नाटक को समृद्ध किया, जिसमें विकसित पात्र, नैतिक विषयवस्तु और भावनात्मक गहराई होती थी। *मृच्छकटिकम्* (शूद्रक) और *मुद्राराक्षस* (विशाखदत्त) जैसे नाटक सामाजिक-राजनीतिक विषयों को दर्शाते हैं और ऐतिहासिक घटनाओं व शासकों-नागरिकों के नैतिक द्वंद्वों की झलक देते हैं।

5. **धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ**

गुप्त विद्वानों ने पुराणों, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों के माध्यम से धार्मिक साहित्य को समृद्ध किया। इन ग्रंथों ने कर्मकांड, नैतिकता और सामाजिक नियमों को संहिताबद्ध किया, जिससे हिन्दू दर्शन और समाज संरचना को दिशा मिली, जो सदियों तक धार्मिक परंपराओं का मार्गदर्शन करती रही।

6. **बौद्ध और जैन साहित्यिक योगदान**

बौद्ध विद्वान वसुबंधु द्वारा *अभिधर्मकोश* जैसी कृतियाँ और जैन विद्वानों द्वारा संकलित ग्रंथ इस काल की बहुलतावादी साहित्यिक संस्कृति को दर्शाते हैं। इन ग्रंथों ने विभिन्न सम्प्रदायों में धार्मिक विमर्श और दार्शनिक बहसों को समृद्ध किया।

7. **लौकिक साहित्य और गद्य कथा परंपरा**

पंचतंत्र और *हितोपदेश* जैसे लौकिक ग्रंथों की रचना या संकलन इसी काल में हुई। ये नैतिक कहानियों और कथाओं का संग्रह हैं, जो सांस्कृतिक सीमाओं को पार कर फारस, अरब और यूरोप तक पहुँचे, और गुप्त काल की कथा परंपरा की सार्वभौमिकता को दर्शाते हैं।

इस प्रकार, गुप्त काल का कला और साहित्य में योगदान एक सांस्कृतिक विरासत के रूप में स्थापित हुआ, जो आज भी भारत और दुनिया को प्रेरित करता है। आगे बढ़ते हुए, शास्त्रीय कला रूपों को पुनर्जीवित करने, साहित्यिक अनुवादों को प्रोत्साहित करने और सांस्कृतिक शिक्षा को आधुनिक पाठ्यक्रमों में एकीकृत करने की आवश्यकता है। इससे गुप्त युग की समृद्ध विरासत को संरक्षित किया जा सकेगा और आने वाली पीढ़ियों को इसका लाभ मिल सकेगा।

4. 1857 के विद्रोह ने राष्ट्रीय जागरण को किस हद तक प्रतिबिंबित किया? विवेचना कीजिए।

1857 की क्रांति, जिसे प्रायः भारत के स्वतंत्रता संग्राम की पहली लड़ाई कहा जाता है, प्रारंभ में एक सिपाही विद्रोह के रूप में शुरू हुई थी लेकिन शीघ्र ही यह एक व्यापक राजनीतिक और सामाजिक विद्रोह में परिवर्तित हो गई। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसने औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध सामूहिक चेतना को प्रज्वलित किया और आने वाले दशकों में भारत के राष्ट्रीय जागरण की नींव रखी।

1857 का विद्रोह

1. **तात्कालिक कारण – ग्रीसयुक्त कारतूस विवाद**

विद्रोह की शुरुआत मई 1857 में मेरठ से हुई, जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में प्रयुक्त ग्रीसयुक्त कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी होने की अफवाह फैली। यह हिन्दू और मुस्लिम दोनों धार्मिक भावनाओं को आहत करता था, जिससे भारतीय सिपाहियों (सिपाही) में व्यापक असंतोष उत्पन्न हुआ।

2. **सैन्य असंतोष और सिपाही विद्रोह**

सिपाहियों ने इस विद्रोह में बड़े पैमाने पर भाग लिया क्योंकि वे कम वेतन, नस्लीय भेदभाव और खराब सेवा शर्तों से आक्रोशित थे। यह विद्रोह दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, झाँसी और ग्वालियर तक फैल गया और कई क्षेत्रों में सैनिकों के नेतृत्व में एक व्यापक सैन्य और नागरिक विद्रोह में बदल गया।

3. **पारंपरिक शासकों का नेतृत्व**

बहादुर शाह ज़फ़र, रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना साहेब और बेगम हज़रत महल जैसे नेताओं के नेतृत्व में विद्रोह को गति मिली। ये नेता अपदस्थ शासकों और अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, जिन्होंने अपने पारंपरिक विशेषाधिकारों की पुनः स्थापना का प्रयास किया और इस आंदोलन को राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया।

4. **विद्रोह का क्षेत्रीय विस्तार**

हालाँकि यह विद्रोह मुख्य रूप से उत्तर और मध्य भारत में केंद्रित था, लेकिन बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान के कुछ हिस्सों में स्थानीय विद्रोह भी हुए। हालाँकि पंजाब, दक्षिण भारत और बंगाल जैसे क्षेत्र अपेक्षाकृत शांत रहे, जिससे इस आंदोलन की भौगोलिक सीमाएँ स्पष्ट होती हैं।

5. **किसानों और कारीगरों की जन भागीदारी**

किसानों, कारीगरों और ग्रामीण समुदायों ने शोषणकारी राजस्व नीतियों, विस्थापन और आर्थिक कठिनाइयों के कारण विद्रोह में भाग लिया। यद्यपि उनकी भागीदारी बिखरी हुई और असंगठित थी, परन्तु यह औपनिवेशिक भू-राजस्व और व्यापार नीतियों के विरुद्ध व्यापक ग्रामीण असंतोष को दर्शाती है।

6. **धार्मिक और सांस्कृतिक तत्व**

इस विद्रोह में धार्मिक स्वर प्रबल थे, जहाँ धर्म और धार्मिक पहचान की रक्षा के आह्वान किए गए। कई क्षेत्रों में हिन्दू-मुस्लिम एकता देखने को मिली, जो बहादुर शाह ज़फ़र को भारत का सम्राट घोषित करने में परिलक्षित हुई, जिससे विद्रोहियों के लिए एक साझा राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतीक उभरा।

7. **दमन और परिणाम**

1858 तक ब्रिटिशों ने इस विद्रोह को क्रूरता से कुचल दिया, उन्होंने अपनी सैन्य शक्ति का पूर्ण प्रयोग किया। इसके उत्तर में ब्रिटिश क्राउन ने भारत का प्रत्यक्ष नियंत्रण अपने हाथों ले लिया और ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत कर दिया। यद्यपि यह विद्रोह असफल रहा, लेकिन इसने राष्ट्रीय चेतना के बीज बो दिए, जिसने आगे चलकर उदारवादी और उग्र राष्ट्रवादी आंदोलनों को प्रेरणा दी।

1857 का विद्रोह राष्ट्रीय जागरण का प्रतिबिंब

1. **उपनिवेशवाद-विरोधी सामूहिक भावना का उदय**

यद्यपि यह विद्रोह क्षेत्रीय रूप से सीमित था, फिर भी इसने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध पहली व्यापक चुनौती प्रस्तुत की। सैनिकों, किसानों और शासकों जैसे विविध सामाजिक वर्गों का एक विदेशी शत्रु के विरुद्ध एकजुट होना एक प्रारंभिक राष्ट्रीय जागरण का संकेत था, यद्यपि यह पूर्ण रूप से अखिल भारतीय पहचान में परिवर्तित नहीं हो सका।

2. **भारतीय संप्रभुता की प्रतीकात्मक पुनः स्थापना**

बहादुर शाह ज़फ़र को "हिंदुस्तान का सम्राट" घोषित करना राष्ट्रीय राजनीतिक एकता की आकांक्षा का प्रतीक था। यद्यपि यह केवल प्रतीकात्मक ही था, परंतु इससे यह प्रदर्शित होता है कि विद्रोही एक समवेत भारतीय संप्रभुता की कल्पना कर रहे थे, जो ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा थोपे गए औपनिवेशिक शासन का विरोध करती थी।

3. **राष्ट्रीय पहचान के रूप में हिन्दू-मुस्लिम एकता**

इस विद्रोह में धार्मिक एकता स्पष्ट रूप से देखने को मिली, जहाँ हिन्दू और मुस्लिम सैनिक तथा नेता एक साथ लड़े। दिल्ली और अवध में किए गए संयुक्त घोषणाएँ दोनों समुदायों से आह्वान करती थीं, जो उपनिवेशवादी विभाजनों से परे साझा ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों पर आधारित एक प्रारंभिक राष्ट्रीय पहचान को दर्शाती हैं।

4. **विविध सामाजिक वर्गों की भागीदारी**

किसानों, कारीगरों, जमींदारों और अपदस्थ शासकों की भागीदारी से इस आंदोलन का व्यापक सामाजिक आधार सिद्ध होता है। इस वर्गीय सहभागिता ने यह दर्शाया कि उपनिवेशीय शोषण को विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों ने एक साझा संकट के रूप में पहचाना, जिससे सामूहिक राजनीतिक जागरूकता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सामने आया।

5. **आर्थिक शोषण की चेतना का उदय**

यह विद्रोह आंशिक रूप से कृषि संकट, कारीगरों के विस्थापन और पारंपरिक उद्योगों के विनाश से प्रेरित था, जो ब्रिटिश नीतियों का परिणाम था। यह प्रारंभिक आर्थिक चेतना को दर्शाता है, जिसमें जनता ने अपने जीवन और सामाजिक कल्याण के लिए औपनिवेशिक आर्थिक शोषण को एक खतरे के रूप में पहचानना शुरू किया।

6. **राजनीतिक जनजागरण हेतु धार्मिक प्रतीकों का उपयोग**

विद्रोहियों ने धार्मिक प्रतीकों, सांस्कृतिक प्रथाओं और त्योहारों का उपयोग जनसाधारण को संगठित करने के लिए किया। इन तरीकों ने सामूहिक पहचान और उद्देश्य की भावना को जन्म दिया, जिससे यह विद्रोह यद्यपि पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष या आधुनिक नहीं था, फिर भी इसमें साझा मूल्यों के आधार पर जन-संगठन की प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

7. **भावी राष्ट्रवादी आंदोलनों के लिए प्रेरणा**

यद्यपि यह विद्रोह असफल रहा, लेकिन इसने स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे भावी आंदोलनों को प्रेरित किया। बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने 1857 को राष्ट्रीय चेतना की पहली चिंगारी कहा और इसकी भावना और शिक्षाओं पर आगे का आंदोलन खड़ा किया।

इस प्रकार, 1857 का विद्रोह भले ही एक आधुनिक राष्ट्रवादी आंदोलन के रूप में पूर्णतः विकसित न रहा हो, परंतु यह भारत के राष्ट्रीय जागरण की दिशा में एक निर्णायक मील का पत्थर रहा। इसने सामूहिक प्रतिरोध की समावेशी भावना को मान्यता दी, जिससे आज के भारत में लोकतांत्रिक भागीदारी, सामाजिक एकता और राष्ट्रीय अखंडता को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है।

5. 19वीं सदी में जर्मनी और इटली के एकीकरण की प्रक्रियाओं की तुलना एवं अंतर बताइए। साथ ही, उन्होंने उपनिवेश-विरोधी आंदोलनों को क्या सबक दिये?

19वीं शताब्दी में जर्मनी और इटली का एकीकरण यूरोप के राजनीतिक परिदृश्य को पूरी तरह से बदलने वाला एक ऐतिहासिक मोड़ था। दोनों ही प्रक्रियाएँ राष्ट्रवाद, सैन्य अभियानों और कूटनीतिक रणनीतियों से संचालित थीं, लेकिन उनके नेतृत्व शैलियों और रणनीतियों में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ थीं।

19वीं शताब्दी में जर्मनी और इटली की एकीकरण प्रक्रियाएँ

1. **सशक्त नेतृत्व की भूमिका**

जर्मनी के एकीकरण का नेतृत्व ओट्टो वॉन बिस्मार्क ने किया, जिन्होंने "रक्त और लौह" की नीति द्वारा सैन्य शक्ति और कूटनीति का उपयोग किया। दूसरी ओर, इटली में एकाधिक नेताओं—ज्यूसपे मैज़िनी, काउंट कैवूर और ज्यूसपे गैरीबाल्डी—द्वारा वैचारिक राष्ट्रवाद, कूटनीतिक गठबंधनों और जन आंदोलनों के समन्वय से राजनीतिक एकता की दिशा में प्रयास किए गए।

2. **कूटनीतिक चालें और व्यावहारिक राजनीति**

बिस्मार्क की रणनीति "रियलपोलिटिक" पर आधारित थी, जिसमें डेनमार्क, ऑस्ट्रिया और फ्रांस के विरुद्ध युद्धों के माध्यम से जर्मन राज्यों को एकजुट किया गया। वहीं कैवूर के नेतृत्व में इटली ने फ्रांस के साथ गठबंधन बनाए और यूरोपीय प्रतिद्वंद्विताओं का लाभ उठाकर ऑस्ट्रिया के प्रभाव को कमज़ोर किया। दोनों ने कूटनीति का सहारा लिया, लेकिन जर्मनी की प्रक्रिया अधिक युद्ध-केंद्रित थी।

3. **जन भागीदारी और जन आंदोलन**

इटली के एकीकरण में जनसाधारण की महत्वपूर्ण भागीदारी रही, विशेषतः गैरीबाल्डी के रेड शर्ट्स आंदोलन के माध्यम से। इसके विपरीत, जर्मनी का एकीकरण राज्य-प्रेरित था और प्रुशियन सैन्य तथा राजनीतिक अभिजात वर्ग द्वारा संचालित हुआ। इस दृष्टि से, इटली की एकता अधिक लोकतांत्रिक और जन-केंद्रित प्रतीत होती है।

4. **विदेशी शक्तियों की भूमिका**

इटली का एकीकरण फ्रांस के नेपोलियन तृतीय के सैन्य सहयोग पर काफी हद तक निर्भर था, विशेषतः ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्धों में। वहीं जर्मनी ने विदेशी शक्तियों को रणनीतिक रूप से अलग-थलग किया और उन्हें पराजित किया, जिससे उसकी एकता अधिक आत्मनिर्भर तरीके से साकार हुई।

5. **युद्धों और सैन्य शक्ति का प्रयोग**

दोनों देशों की एकता प्रक्रिया में युद्ध निर्णायक रहे। बिस्मार्क द्वारा लड़ा गया फ्रांको-प्रुशियन युद्ध 1871 में जर्मन साम्राज्य की स्थापना का प्रमुख कारण बना। इटली ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्धों और गैरीबाल्डी के अभियानों से एकता प्राप्त की, लेकिन रोम और वेनेटिया जैसे क्षेत्रों पर नियंत्रण बाद में स्थापित हुआ।

6. **सांस्कृतिक और भाषाई एकता**

जर्मनी में भाषाई और सांस्कृतिक एकता अपेक्षाकृत अधिक थी, जिससे राजनीतिक एकीकरण सुगम बना। इसके विपरीत, इटली को क्षेत्रीय, भाषाई और सांस्कृतिक विविधताओं का सामना करना पड़ा, जिससे उसका एकीकरण अधिक जटिल और चुनौतीपूर्ण रहा।

7. **परिणाम और राजनीतिक संरचना**

जर्मनी एक संघीय साम्राज्य के रूप में उभरा, जिसमें प्रशिया की प्रधानता और कैसर का नेतृत्व था। वहीं इटली ने विक्टर इमैनुएल द्वितीय के नेतृत्व में एक संवैधानिक राजतंत्र स्थापित किया, जिसकी शक्तियाँ सीमित थीं। जर्मनी एक मजबूत केंद्रीकृत राष्ट्र बना जबकि इटली राजनीतिक और आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत कमज़ोर रहा।

औपनिवेशिक-विरोधी आंदोलनों के लिए सीख

1. **राष्ट्रवाद एक एकीकृत शक्ति के रूप में**

दोनों एकीकरण प्रक्रियाओं ने यह सिद्ध किया कि राष्ट्रवाद आंतरिक विभाजनों को समाप्त कर राजनीतिक एकता प्राप्त करने में सक्षम है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम जैसे औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों ने इस विचार से प्रेरणा लेकर क्षेत्रीय, जातीय और भाषाई विविधता के बावजूद राष्ट्रीय पहचान का विकास किया।

2. **नेतृत्व और रणनीतिक दृष्टिकोण**

बिस्मार्क, मैज़िनी, कैवूर और गैरीबाल्डी जैसे नेताओं ने यह दिखाया कि दूरदर्शी नेतृत्व कितना निर्णायक हो सकता है। महात्मा गांधी, हो ची मिन्ह और जोमो केन्याटा जैसे औपनिवेशिक-विरोधी नेताओं ने भी कूटनीति, जन आंदोलन और प्रतिरोध को मिलाकर रणनीतिक नेतृत्व शैली अपनाई।

3. **जन भागीदारी और लोकप्रिय आंदोलन**

गैरीबाल्डी के रेड शर्ट्स जैसे लोकप्रिय आंदोलनों ने यह दिखाया कि आम जनता की भागीदारी राजनीतिक परिवर्तन की एक शक्तिशाली ताकत हो सकती है। भारत के असहयोग आंदोलन और दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद विरोधी आंदोलन ने इसी सिद्धांत को अपनाया।

4. **वैश्विक शक्तियों के साथ कूटनीतिक जुड़ाव**

जैसे इटली और जर्मनी ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विदेशी शक्तियों से गठबंधन बनाए, वैसे ही औपनिवेशिक-विरोधी नेताओं ने भी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और वैश्विक कूटनीति को महत्व दिया। भारत द्वारा ब्रिटिश जनता और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से की गई अपीलें तथा अफ्रीकी आंदोलनों द्वारा वैश्विक औपनिवेशिक विरोधी भावनाओं का उपयोग इसी का उदाहरण हैं।

5. **सशस्त्र और असशस्त्र संघर्षों का समन्वय**

बिस्मार्क के युद्धों और इटली की कूटनीति-सैन्य रणनीतियों से औपनिवेशिक आंदोलनों ने यह सीखा कि सशस्त्र संघर्ष (जैसे अल्जीरिया की स्वतंत्रता संग्राम) और अहिंसक प्रयास (जैसे गांधीजी का सत्याग्रह) दोनों ही, संदर्भ के अनुसार, अत्यधिक प्रभावी हो सकते हैं।

6. **आंतरिक विविधता का प्रबंधन**

इटली के क्षेत्रीय और सांस्कृतिक विविधताओं से जूझने के अनुभव ने राष्ट्र निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण सबक दिए। भारत, नाइजीरिया और इंडोनेशिया जैसे बहु-जातीय राष्ट्रों के औपनिवेशिक-विरोधी आंदोलनों ने समावेशी राष्ट्रवाद को अपनाया, जिससे भविष्य में विघटन को रोका जा सका।

7. **समावेशी राजनीतिक ढाँचे की स्थापना**

जर्मनी और इटली ने संविधान और संसदों के साथ आधुनिक राष्ट्र-राज्यों की स्थापना की। औपनिवेशिक-विरोधी नेताओं ने भी स्वतंत्रता के बाद इसी प्रकार के ढाँचे अपनाए—जैसे भारत का लोकतांत्रिक संविधान—जो विधि के शासन, प्रतिनिधित्व और नागरिक अधिकारों पर आधारित समावेशी, संप्रभु राजनीतिक प्रणाली की स्थापना को सुनिश्चित करता है।

इस प्रकार, जर्मनी और इटली का एकीकरण राष्ट्रवाद, नेतृत्व और राज्य-निर्माण की प्रक्रिया को समझने हेतु एक ऐतिहासिक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करता है। विश्वभर के औपनिवेशिक-विरोधी आंदोलनों ने इससे संगठन, कूटनीति और स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात शासन प्रणाली के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण सबक लिए। इसने समावेशी राष्ट्रवाद के पोषण, लोकतांत्रिक संस्थाओं की सुदृढ़ता और सामाजिक एकता को प्रोत्साहित कर 21वीं सदी में मजबूत और संगठित राष्ट्रों के निर्माण में सहायता प्रदान की।

6. "भारत में धर्मनिरपेक्षता एक जीता-जागता विरोधाभास है।" सामाजिक और संवैधानिक पक्षों के साथ चर्चा कीजिए।

भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान से है, जिसमें किसी धर्म को आधिकारिक रूप से न तो बढ़ावा दिया जाता है और न ही भेदभाव किया जाता है। यद्यपि संविधान में प्रारंभिक रूप से धर्मनिरपेक्षता स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं थी, लेकिन इसे 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का समाजशास्त्रीय विरोधाभास

1. **धार्मिक बहुलता और दैनिक सह-अस्तित्व**

   भारतीय समाज धार्मिक बहुलता से युक्त है, जहाँ हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन और बौद्ध समुदाय एक साथ रहते हैं। ईद, दीवाली, क्रिसमस और गुरुपुरब जैसे त्योहार सार्वजनिक रूप से मनाए जाते हैं। फिर भी गुजरात 2002 जैसे सांप्रदायिक दंगों से यह स्पष्ट होता है कि सद्भाव और संघर्ष साथ-साथ अस्तित्व में हैं, जिससे धर्मनिरपेक्षता व्यवहार में विरोधाभासी प्रतीत होती है।

2. **संवैधानिक गारंटी के बावजूद सांप्रदायिक हिंसा**

   बाबरी मस्जिद विध्वंस (1992) और मुज़फ्फरनगर दंगे (2013) जैसे घटनाएँ दर्शाती हैं कि धार्मिक पहचान प्रायः संघर्ष का कारण बन जाती हैं। यद्यपि लोग सामाजिक स्थान साझा करते हैं, फिर भी ध्रुवीकरण और सांप्रदायिक राजनीति सामाजिक समरसता को खतरे में डालते हैं, जिससे संवैधानिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ के बीच का अंतर प्रकट होता है।

3. **वोट बैंक की राजनीति और धार्मिक तुष्टीकरण**

   राजनीतिक दल अक्सर वोट बैंक की राजनीति करते हैं और धर्मनिरपेक्ष शासन की बजाय धार्मिक भावनाओं को भुनाते हैं। अल्पसंख्यकों के लिए कल्याण योजनाओं के वादे या चुनावों के दौरान बहुसंख्यकवादी बयान दर्शाते हैं कि धर्म को एक राजनीतिक उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है, जिससे धर्मनिरपेक्षता एक विवादास्पद और रणनीतिक प्रथा बन जाती है।

4. **सांस्कृतिक समन्वय बनाम धार्मिक कट्टरता**

   भारत सूफी-भक्ति आंदोलनों जैसे समन्वयवादी परंपराओं का गौरवशाली उदाहरण है, जहाँ धार्मिक सीमाएँ धुंधली हो जाती हैं। फिर भी विभिन्न धर्मों के रूढ़िवादी धार्मिक नेता सुधारों का विरोध करते हैं और कठोर व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। यह साझा सांस्कृतिक विरासत और संप्रदायिक कठोरता की द्वैधता, भारतीय धर्मनिरपेक्षता के व्यवहारिक विरोधाभास को उजागर करती है।

5. **धार्मिक समुदायों के भीतर सामाजिक स्तरीकरण**

   हिंदू धर्म में जाति विभाजन, इस्लाम में अशराफ-अजलफ भेद और ईसाई धर्म में संप्रदायगत अंतर यह दर्शाते हैं कि धार्मिक समुदायों के भीतर भी असमानताएँ व्याप्त हैं। यह अंतर्धार्मिक स्तरीकरण धर्मनिरपेक्ष आदर्शों—सभी धर्मों को समान मानने—को जटिल बनाता है, जिससे सामाजिक बहिष्करण के कई स्तर सामने आते हैं।

6. **धर्मनिरपेक्ष प्रथाओं में क्षेत्रीय विविधताएँ**

   केरल और पंजाब जैसे राज्य धार्मिक समुदायों की अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को दर्शाते हैं, जबकि उत्तर प्रदेश और बिहार में सांप्रदायिक तनाव अधिक बार देखा गया है। यह क्षेत्रीय विविधता यह दर्शाती है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता एक समान नहीं है, जिससे इसकी विरोधाभासी प्रकृति और गहराई से सामने आती है।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का संवैधानिक विरोधाभास

1. **प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता की उद्घोषणा**

   42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा "धर्मनिरपेक्ष" शब्द को प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से जोड़ा गया, जिससे राज्य की धार्मिक तटस्थता को स्वीकार किया गया। फिर भी, विशिष्ट धार्मिक समूहों के लिए प्रायोजित योजनाएँ इस तटस्थता को अस्पष्ट कर देती हैं, जिससे चयनात्मक हस्तक्षेप और तुष्टीकरण की राजनीति की आशंका उत्पन्न होती है।

2. **अनुच्छेद 25 और धार्मिक स्वतंत्रता**

   अनुच्छेद 25 नागरिकों को अपनी आस्था का पालन करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। फिर भी गौवध पर प्रतिबंध या धर्मांतरण विरोधी कानून जैसी "उचित सीमाएँ" यह दिखाती हैं कि धार्मिक स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है, बल्कि सशर्त और विवादास्पद है।

3. **अनुच्छेद 26 और धार्मिक स्वायत्तता**

अनुच्छेद 26 धार्मिक संप्रदायों को अपने धार्मिक मामलों का प्रबंधन करने की स्वायत्तता देता है। फिर भी तमिलनाडु और कर्नाटक जैसे राज्यों में मंदिरों पर राज्य नियंत्रण और चर्चों एवं मस्जिदों में गैर-हस्तक्षेप की नीति धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों के असंगत अनुप्रयोग को प्रश्नों के घेरे में लाती है।

4. **अनुच्छेद 29-30 और अल्पसंख्यक अधिकार**

संविधान अनुच्छेद 29 और 30 के तहत अल्पसंख्यकों को विशेष संरक्षण देता है, जिससे वे अपनी संस्कृति को बनाए रख सकें और शैक्षणिक संस्थान स्थापित कर सकें। यद्यपि इनका उद्देश्य सशक्तिकरण है, आलोचक मानते हैं कि यह सकारात्मक भेदभाव कभी-कभी बहुसंख्यकों को अलग-थलग कर देता है, जिससे बहुसंख्यक असंतोष को बल मिलता है।

5. **समान नागरिक संहिता (UCC) पर बहस**

अनुच्छेद 44 समान नागरिक संहिता को बढ़ावा देता है, जिसका उद्देश्य कानूनी एकरूपता है। फिर भी हिंदू, मुस्लिम और ईसाई समुदायों के वैयक्तिक कानून—विशेषकर विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के संदर्भ में—अलग-अलग हैं। यह कानूनी बहुलता यह दिखाती है कि समानता सुनिश्चित करते हुए धार्मिक स्वायत्तता को भी मान्यता दी गई है, जिससे संवैधानिक विरोधाभास उत्पन्न होता है।

6. **न्यायिक हस्तक्षेप और विरोधाभास**

शाह बानो केस (1985) और सबरीमाला निर्णय (2018) जैसे ऐतिहासिक निर्णय यह दर्शाते हैं कि न्यायपालिका धार्मिक स्वतंत्रता और लैंगिक न्याय के बीच संतुलन स्थापित करने की चुनौतीपूर्ण भूमिका निभाती है।

7. **धार्मिक त्योहारों और सब्सिडी में राज्य की भागीदारी**

हज सब्सिडी (अब समाप्त) या कुंभ मेले के लिए सरकार द्वारा दी गई सहायता दर्शाती है कि राज्य धार्मिक गतिविधियों में भाग लेता है।

इस प्रकार, भारत की धर्मनिरपेक्षता एक जटिल और व्यावहारिक यथार्थ है, जो विविध धार्मिक परंपराओं और संवैधानिक सिद्धांतों के बीच संतुलन बनाए रखने की कोशिश करती है। आगे का मार्ग 'सिद्धांत आधारित दूरी' (Principled distance), कानूनी एकरूपता और अंतर-धार्मिक संवाद को बढ़ावा देने में है। धर्मनिरपेक्ष शिक्षा को सशक्त करना, समावेशी शासन और सामाजिक सद्भाव को बढ़ाना आवश्यक है ताकि इस व्यवहारिक विरोधाभास को एक सुसंगत राष्ट्रीय भावना में बदला जा सके, जो संविधान की सच्ची आत्मा के अनुरूप हो।

7. भारत में धार्मिक कट्टरता के उभार के क्या कारण हैं? समकालीन भारत में अंतर-समुदायिक संबंधों पर धार्मिक कट्टरता के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

धार्मिक कट्टरता (Religious Fundamentalism) का अर्थ धार्मिक विचारधाराओं के प्रति कठोर और रूढ़िवादी आग्रह से है, जो अक्सर धार्मिक बहुलता और आधुनिक मूल्यों को अस्वीकार करता है। भारत जैसे बहु-धार्मिक समाज में इसका उदय कई कारणों से हो रहा है। इसका अंतर-सामुदायिक संबंधों पर प्रभाव ध्रुवीकरण और संघर्ष से लेकर सामाजिक कल्याण तक विस्तृत हुआ है, जिससे यह एक जटिल सामाजिक वास्तविकता बन चुका है।

भारत में धार्मिक कट्टरता के बढ़ने के कारण

1. **ऐतिहासिक आघात और विभाजन की विरासत**

विभाजन, सांप्रदायिक दंगों और मंदिर-मस्जिद विवादों की स्मृति ने धार्मिक विभाजन को जीवित रखा है। इन अनसुलझे घावों को स्वार्थी तत्वों द्वारा भुनाया जाता है, जिससे "पीड़ितता" की भावना को हवा मिलती है, विशेष रूप से चुनावों या सामाजिक अस्थिरता के समय, और यही कट्टरता को बढ़ावा देता है।

2. **राजनीतिक ध्रुवीकरण और वोट बैंक की राजनीति**

धार्मिक पहचान को अक्सर चुनावी लाभ के लिए प्रयोग किया जाता है, जिससे संप्रदायिक अभियान जन्म लेते हैं। "लव जिहाद" जैसे अभियान या चुनावों में बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक विभाजन की राजनीति, पहचान आधारित मतदान को बढ़ावा देते हैं, जिससे धार्मिक कट्टरता सामान्यीकृत होती जा रही है।

3. **धर्मनिरपेक्ष शासन के कमज़ोर क्रियान्वयन**

संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता के बावजूद, धार्मिक मामलों में राज्य का चयनात्मक हस्तक्षेप—जैसे मंदिरों का सरकारी नियंत्रण या अल्पसंख्यकों के लिए तुष्टिकरण की नीतियाँ—पक्षपात की भावना उत्पन्न करती हैं। इससे राज्य की तटस्थता पर विश्वास कमज़ोर होता है और धार्मिक संगठनों को वर्चस्व स्थापित करने का अवसर मिलता है।

4. **सामाजिक-आर्थिक हाशियेकरण**

हाशिये पर स्थित समुदाय अपनी एकता और सामाजिक सुरक्षा के लिए धार्मिक पहचान का सहारा लेते हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ, बेरोज़गारी और सामाजिक गतिशीलता की कमी धार्मिक नेटवर्क को राज्य विफलता के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिससे लोग कट्टर व्याख्याओं की ओर आकर्षित होते हैं।

5. **सोशल मीडिया द्वारा तकनीकी प्रसार**

सोशल मीडिया गलत सूचनाओं, घृणा भाषण और संप्रदायिक प्रचार का अड्डा बन गया है। फर्जी समाचार, छेड़ी गई वीडियो क्लिप और एल्गोरिदम-प्रेरित 'इको चैंबर' धार्मिक पूर्वाग्रहों को मज़बूत करते हैं, जिससे युवाओं और असुरक्षित समूहों में कट्टर विचारधारा की ओर झुकाव बढ़ता है।

6. **अंतर्धार्मिक संवाद और शांति पहलों की विफलता**

संरचित अंतर्धार्मिक संवाद और सामुदायिक जुड़ाव मंचों की अनुपस्थिति से कट्टर विचारधाराओं के प्रवक्ता सार्वजनिक विमर्श में हावी हो जाते हैं। इससे समुदायों के बीच दूरी बढ़ती है, परस्पर समझदारी का विकास नहीं हो पाता और रूढ़ियाँ तथा भय बिना किसी चुनौती के बढ़ते जाते हैं।

समकालीन भारत में अंतर-सामुदायिक संबंधों पर धार्मिक कट्टरता का प्रभाव

1. **सामाजिक विभाजन को गहराना**

धार्मिक कट्टरता "हम बनाम वे" की सोच को बढ़ावा देती है, जिससे संप्रदायिक विभाजन गहरे हो जाते हैं। इससे सामाजिक एकता कमज़ोर होती है और बहु-धार्मिक सह-अस्तित्व संकट में आ जाता है। दिल्ली दंगे (2020) जैसे उदाहरण दिखाते हैं कि कट्टर बयानबाज़ी कैसे सामाजिक स्थानों को हिंसक संघर्ष क्षेत्र में बदल सकती है।

2. **सांप्रदायिक हिंसा और घृणा अपराधों में वृद्धि**

बीफ खाने को लेकर की गई लिंचिंग, घृणा भाषण और लक्षित सांप्रदायिक हिंसा यह दर्शाती है कि कैसे कट्टर विचारधाराएँ वास्तविक शारीरिक हिंसा में बदल जाती हैं। इस प्रकार की हिंसा समुदायों के बीच विश्वास को नष्ट करती है और भय, पूर्वाग्रह और सामाजिक बहिष्करण को स्थायी बनाती है।

3. **धार्मिक पहचान की राजनीति में वृद्धि**

कट्टरता राजनीतिक दोहन का आधार बन जाती है। पहचान आधारित राजनीति विकास और शासन से ध्यान हटाकर संप्रदायिक निष्ठा पर केंद्रित हो जाती है। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में चुनाव अभियानों के ध्रुवीकरण में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

4. **अंतर्धार्मिक सौहार्द प्रयासों को कमज़ोर करना**

कट्टरपंथी नेता अक्सर धार्मिक विविधता के मूल्यों को अस्वीकार करते हैं और अंतर्धार्मिक संवाद का विरोध करते हैं। इससे शांति स्थापना की पहलें कमज़ोर होती हैं, समुदाय आत्मकेंद्रित और प्रतिकूल हो जाते हैं, जिससे सांझा सांस्कृतिक और सामाजिक भागीदारी के अवसर घट जाते हैं।

5. **सामाजिक पृथक्करण और गेट्टोकरण को बढ़ावा देना**

भय के कारण समुदाय अक्सर आत्म-रक्षण हेतु धार्मिक गेट्टो में सिमट जाते हैं, जिससे दैनिक सामाजिक संपर्क कम होता है। मुंबई के मुंब्रा या दिल्ली के जामिया नगर जैसे स्थानों में यह स्थानिक पृथक्करण देखा जा सकता है, जिससे सामाजिक विघटन और बढ़ जाता है।

6. **समुदायों के भीतर सुधार को बाधित करना**

धार्मिक कट्टरता आंतरिक आलोचना और सामाजिक सुधार का विरोध करती है। लैंगिक समानता आंदोलनों, LGBTQ+ अधिकारों और वैयक्तिक कानूनों में सुधार जैसे प्रयासों का रूढ़िवादी समूहों द्वारा विरोध किया जाता है, जिससे सामाजिक प्रगति और अंतर-सामुदायिक संवाद अवरुद्ध होता है।

7. **कभी-कभी सकारात्मक सामाजिक सक्रियता**

इन सबके बावजूद, कुछ धर्म आधारित समूह सामाजिक कल्याण कार्यों के लिए धार्मिक नेटवर्क का उपयोग करते हैं, जैसे सिखों के लंगर या मुस्लिम वेलफेयर ट्रस्ट। ये प्रयास अस्थायी रूप से सामाजिक अंतर को पाटते हैं, परन्तु ये सामान्यतः केवल समुदाय विशेष तक सीमित रहते हैं और अंतर-सामुदायिक स्तर पर व्यापक प्रभाव नहीं डाल पाते।

इस प्रकार, भारत में धार्मिक कट्टरता का उभार सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता के लिए गंभीर खतरा है। इसका समाधान संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता को मजबूत करने, घृणा भाषण को नियंत्रित करने और अंतर्धार्मिक संवाद को बढ़ावा देने में है। ऐसा समावेशी सामाजिक-राजनीतिक वातावरण बनाना आवश्यक है, जो विविधता का उत्सव मनाए और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं लोकतांत्रिक मजबूती की दिशा में भारत को आगे ले जाए।

8. "सिर्फ कानून बनाना पितृसत्ता को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है।" लैंगिक न्याय से संबंधित कानूनों के क्रियान्वयन की चुनौतियों का परीक्षण कीजिए।

पितृसत्ता (Patriarchy) एक ऐसा सामाजिक तंत्र है जिसमें शक्ति संरचनाएँ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में पुरुषों को महिलाओं की तुलना में प्राथमिकता देती हैं। यद्यपि भारत ने घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 और कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (POSH) अधिनियम, 2013 जैसे प्रगतिशील लैंगिक कानूनों को लागू किया है, फिर भी सामाजिक मानसिकताएँ, संस्थागत पक्षपात और कमज़ोर क्रियान्वयन यह दर्शाते हैं कि केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है — वास्तविक लैंगिक न्याय के लिए सामाजिक और संस्थागत परिवर्तन भी आवश्यक हैं।

सामाजिक और संस्थागत सीमाएँ

1. **पितृसत्तात्मक मानसिकता और सामाजिक मान्यताएँ**

पितृसत्ता सामाजिक मानदंडों, परंपराओं और रीति-रिवाजों में गहराई से निहित है। कानून दहेज या घरेलू हिंसा जैसी प्रथाओं को अपराध घोषित कर सकते हैं, परंतु अंतर्निहित लैंगिक भूमिकाएँ और पारिवारिक दबाव महिलाओं को कानूनी राहत लेने से रोकते हैं, जिससे कानूनी सुधारों की परिवर्तनकारी शक्ति सीमित हो जाती है।

2. **धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से विरोध**

कई धार्मिक और सामुदायिक नेता पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को चुनौती देने वाले सुधारों का विरोध करते हैं, जैसे कि लैंगिक-तटस्थ उत्तराधिकार अधिकार या धार्मिक स्थलों में महिलाओं के प्रवेश। यह विरोध कानूनों के प्रभाव को कमज़ोर करता है और सामाजिक स्वीकृति को धीमा व अपूर्ण बनाता है।

3. **जागरूकता और विधिक साक्षरता की कमी**

विशेष रूप से ग्रामीण और वंचित समुदायों की महिलाएँ अपने कानूनी अधिकारों से अनभिज्ञ होती हैं। विधिक साक्षरता कार्यक्रमों के अभाव में, कानून केवल पाठ्य वादे बने रहते हैं और जिन्हें सबसे अधिक आवश्यकता होती है उनके लिए अप्राप्य रह जाते हैं, जिससे प्रणालीगत लैंगिक अन्याय बना रहता है।

4. **आर्थिक निर्भरता और सामाजिक अलगाव का भय**

महिलाओं की आर्थिक निर्भरता उन्हें हिंसा या भेदभाव को सहन करने के लिए विवश करती है, भले ही उनके संरक्षण के लिए कानून मौजूद हों। सामाजिक कलंक या पारिवारिक बहिष्कार का भय महिलाओं को शिकायत दर्ज कराने से हतोत्साहित करता है, जिससे कानूनी सुरक्षा की पहुँच कमज़ोर होती है।

5. **अपर्याप्त संस्थागत समर्थन तंत्र**

वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर, सुरक्षित आश्रयगृह और परामर्श सेवाओं जैसे लिंग-संवेदनशील संस्थानों की अनुपस्थिति महिलाओं की न्याय प्राप्ति की क्षमता को कम कर देती है। बिना सहायक ढाँचे के कानून केवल प्रतीकात्मक बन जाते हैं और पीड़ितों के लिए व्यावहारिक समाधान नहीं दे पाते।

6. **न्यायिक देरी और कम रिपोर्टिंग**

भारत की न्यायिक प्रणाली में लंबित मामलों की अधिकता और धीमी न्यायिक प्रक्रिया महिलाओं को न्याय के लिए प्रयास करने से रोकती है। साथ ही, सामाजिक भय या पुलिस की उदासीनता के कारण शिकायतों की कम रिपोर्टिंग कानूनों की प्रभावशीलता को और सीमित कर देती है।

7. **अंतर्व्याप्तता (Intersectionality) और संरचनात्मक भेदभाव**

दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और LGBTQ+ समुदायों की महिलाएँ बहुस्तरीय भेदभाव का सामना करती हैं। प्रचलित लैंगिक कानून इन अंतर्व्याप्त कमज़ोरियों को संबोधित नहीं कर पाते, जिससे "एक जैसा कानून, सब पर लागू" की नीति पितृसत्ता के विविध रूपों को प्रभावी ढंग से तोड़ने में असफल रहती है।

लैंगिक न्याय कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधाएँ

1. **कानून प्रवर्तन में लैंगिक संवेदनशीलता की कमी**

पुलिस और नौकरशाही अधिकारियों में अक्सर लिंग-संवेदनशीलता का अभाव होता है, जिससे पीड़िता को दोषी ठहराने वाली मानसिकता और शिकायतों के अनुचित निपटान की प्रवृत्ति विकसित होती है। इससे पीड़ित महिलाएँ अधिकारियों के पास जाने से कतराती हैं, और कानूनी सुरक्षा जमीनी स्तर पर प्रभावहीन हो जाती है।

2. **शिकायत निवारण तंत्र के लिए अपर्याप्त ढाँचा**

वन स्टॉप सेंटर (OSC) और महिला हेल्पलाइन जैसी योजनाएँ अक्सर सीमित वित्त, स्टाफ की कमी और कमज़ोर पहुँच से ग्रस्त रहती हैं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में। यह उनकी पहुँच को सीमित करता है और लैंगिक न्याय कानूनों को प्रभावी रूप से लागू करने की संस्थागत क्षमता को कमज़ोर करता है।

3. **न्यायपालिका और कानूनी व्याख्या में पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह**

प्रगतिशील कानूनों के बावजूद, कुछ न्यायिक निर्णयों में पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होते हैं, जैसे पीड़िता को दोषी ठहराना या हल्की सजा देना। लैंगिक कानूनों की असंगत व्याख्या न्याय प्रक्रिया को कमज़ोर करती है और संविधान में प्रदत्त लैंगिक समानता की भावना को क्षीण करती है।

4. **विधिक बहुलता और व्यक्तिगत कानूनों में टकराव**

व्यक्तिगत और धर्मनिरपेक्ष कानूनों का सहअस्तित्व विधिक क्रियान्वयन में विरोधाभास उत्पन्न करता है। उदाहरणतः मुस्लिम पर्सनल लॉ में बहुपतित्व या ट्रिपल तलाक जैसे प्रावधान धर्मनिरपेक्ष लैंगिक न्याय सिद्धांतों से टकराते हैं, जिससे एक समान कानूनी प्रणाली का निर्माण जटिल हो जाता है।

5. **विधायिका और प्रवर्तन तंत्र में महिलाओं का कम प्रतिनिधित्व**

संसद, पुलिस और न्यायपालिका में महिलाओं की कम भागीदारी से शासन प्रणाली की लिंग-संवेदनशीलता प्रभावित होती है। निर्णय-निर्माण में महिलाओं की भागीदारी के बिना, कानूनों की रूपरेखा और कार्यान्वयन वास्तविकता से दूर होते हैं, जिससे वे प्रभावहीन हो जाते हैं।

6. **आर्थिक और सामाजिक प्रतिक्रिया**

लैंगिक कानूनों के क्रियान्वयन के दौरान कभी-कभी रूढ़िवादी समूहों की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जो इन्हें "पश्चिमी" या "परिवार-विरोधी" बताते हैं। जैसे कि वैवाहिक बलात्कार को अपराध घोषित करने के विरुद्ध चलाए गए विरोध अभियान, जनस्वीकृति और नीति प्रवर्तन को बाधित करते हैं।

7. **निगरानी और मूल्यांकन तंत्र की कमी**

प्रभावी निगरानी ढाँचे के अभाव में क्रियान्वयन की खामियाँ सामने नहीं आतीं। रियल टाइम डेटा, आवधिक ऑडिट और स्वतंत्र मूल्यांकन की कमी सरकारी एजेंसियों की जवाबदेही को कमज़ोर करती है, जिससे नीतियों का वास्तविक प्रभाव लैंगिक न्याय पर नहीं पड़ता।

निष्कर्ष

यद्यपि विधिक ढाँचे लैंगिक न्याय के लिए आवश्यक हैं, परंतु केवल कानूनों से पितृसत्ता को समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि सामाजिक सुधार, संस्थागत सुदृढ़ता और व्यवहारिक परिवर्तन न हो। अतः वर्तमान समय की आवश्यकता है कि **लैंगिक संवेदनशीलता को मुख्यधारा में लाया जाए, जमीनी स्तर पर कानूनी जागरूकता सुनिश्चित की जाए, संस्थागत समर्थन को सशक्त किया जाए,** और **महिलाओं के नेतृत्व को प्रोत्साहित किया जाए,** ताकि कानूनी वादों को भारत की सभी महिलाओं के लिए वास्तविक जीवन की सच्चाई में बदला जा सके।

9. "भारत की जनसांख्यिकीय लाभांश संरचनात्मक सुधारों के बिना जनसांख्यिकीय बोझ में बदल सकती है।" इस पर चर्चा कीजिए।

भारत की जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Dividend) का तात्पर्य 15 से 64 वर्ष के आयु वर्ग की कार्यशील जनसंख्या के बढ़ते अनुपात से है, जो 2055 तक बढ़ने का अनुमान है। हालाँकि, यदि समुचित नीतिगत हस्तक्षेप नहीं किए गए, तो यह जनसांख्यिकीय लाभांश एक **जनसांख्यिकीय बोझ** में बदल सकता है, जिससे समावेशी विकास और सामाजिक-आर्थिक स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

जनसांख्यिकीय लाभांश के जनसांख्यिकीय बोझ में बदलने के खतरे

1. **बेरोज़गारी और रोज़गारविहीन विकास**

भारतीय अर्थव्यवस्था रोज़गारविहीन विकास का सामना कर रही है, जहाँ निर्माण और आईटी जैसे क्षेत्र युवा जनसंख्या को समाहित करने में असफल रहे हैं। यदि पर्याप्त रोज़गार के अवसर नहीं सृजित हुए, तो कार्यशील आयु वर्ग निष्क्रिय रह सकता है, जिससे आर्थिक निर्भरता और युवाओं में हताशा बढ़ेगी।

2. **कौशल असंगति और कम उत्पादकता**

Skill India Mission की रिपोर्ट के अनुसार, भारत की कार्यबल का केवल एक छोटा हिस्सा औपचारिक रूप से प्रशिक्षित है। यदि शिक्षा और प्रशिक्षण उद्योग की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाता, तो युवा अपर्याप्त रूप से तैयार रहेंगे, जिससे उत्पादकता और प्रतिस्पर्धा में गिरावट आएगी और जनसांख्यिकीय क्षमता आर्थिक बोझ में बदल जाएगी।

3. **जनसंख्या वृद्धि में क्षेत्रीय असंतुलन**

बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे राज्य युवाओं की जनसंख्या में अग्रणी हैं, लेकिन बुनियादी ढाँचे, शिक्षा और रोज़गार के अवसरों में पीछे हैं। यह क्षेत्रीय विषमता विकसित राज्यों जैसे महाराष्ट्र या दिल्ली में पलायन दबाव और सामाजिक तनाव उत्पन्न कर सकती है।

4. **श्रम बाजार का अनौपचारिकीकरण**

अनौपचारिक क्षेत्र का वर्चस्व—जहाँ कम वेतन, रोज़गार की असुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा की कमी होती है—युवाओं को गरिमामय रोज़गार से वंचित करता है। यह अधरोज़गार न केवल आर्थिक विकास को सीमित करता है बल्कि शोषण और गरीबी के जाल को भी बढ़ाता है।

5. **श्रम शक्ति में लैंगिक अंतर**

भारत में महिला श्रम भागीदारी दर विश्व में सबसे कम में से एक है। यदि शिक्षा, रोज़गार और गतिशीलता में लैंगिक बाधाओं को दूर नहीं किया गया, तो जनसांख्यिकीय लाभांश का एक बड़ा हिस्सा अप्रयुक्त रह जाएगा, जिससे आर्थिक और सामाजिक क्षमताएँ कमज़ोर होंगी।

6. **शिक्षा-रोज़गार का संबंध टूटना**भारत की शिक्षा प्रणाली अक्सर रटंत अधिगम पर आधारित होती है, जिसके परिणामस्वरूप डिग्रीधारी छात्र रोज़गार के लिए अक्षम होते हैं। यदि स्कूल से कार्यस्थल तक के संक्रमण में सुधार नहीं हुआ, तो जनसांख्यिकीय खिड़की का लाभ उठाने से पहले वह बंद हो सकती है, जिससे युवाओं में मोहभंग और असंतोष बढ़ेगा।

7. **सामाजिक अशांति और कानून-व्यवस्था की समस्याएँ**

बेरोज़गारी और अधूरी आकांक्षाएँ सामाजिक अशांति, उग्रवाद और अपराध को जन्म दे सकती हैं। नौकरी आरक्षण के आंदोलनों जैसे युवाओं के नेतृत्व वाले विरोध प्रदर्शन इस बात के संकेत हैं कि यदि जनसांख्यिकीय अवसर को गंवाया गया तो उसके सामाजिक-राजनीतिक परिणाम गंभीर हो सकते हैं।

भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ उठाने के लिए संरचनात्मक सुधार

1. **रोज़गार सृजन हेतु श्रम बाजार सुधार**

श्रम कानूनों का सरलीकरण, व्यापार सुगमता को बढ़ावा देना और वस्त्र, एमएसएमई, निर्माण जैसे श्रम-प्रधान क्षेत्रों को प्रोत्साहित करना बड़े पैमाने पर रोज़गार सृजन में सहायक हो सकता है। प्रोडक्शन लिंक्ड इंसेंटिव (PLI) योजनाओं का फोकस केवल उत्पादन नहीं बल्कि रोज़गार पर होना चाहिए।

2. **शिक्षा और कौशल विकास का पुनर्गठन**

पाठ्यक्रम को उद्योग की माँगों के अनुरूप बनाना, व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देना और स्किल इंडिया मिशन को सुदृढ़ करना कौशल अंतर को कम कर सकता है। उद्योग और शिक्षण संस्थानों के बीच साझेदारी को संस्थागत रूप देना आवश्यक है ताकि युवा रोज़गार के लिए तैयार हो सकें।

3. **महिलाओं की कार्यबल में भागीदारी को बढ़ाना**

सुरक्षित कार्यस्थल, लिंग-संवेदनशील सार्वजनिक परिवहन और लचीली कार्य नीतियाँ महिला श्रम भागीदारी को प्रोत्साहित कर सकती हैं। महिला शक्ति केंद्र जैसे कार्यक्रमों का विस्तार कर महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना आवश्यक है, जिससे भारत की जनसांख्यिकीय क्षमता का आधा भाग सशक्त हो सके।

4. **क्षेत्रीय संतुलित विकास को बढ़ावा देना**

जनसांख्यिकीय रूप से समृद्ध लेकिन आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों में बुनियादी ढाँचा, शिक्षा और उद्योग में निवेश से पलायन का दबाव कम किया जा सकता है। पीएम गति शक्ति जैसी योजनाओं को समावेशी क्षेत्रीय विकास पर केंद्रित करना चाहिए।

5. **सामाजिक सुरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करना**

स्वास्थ्य सेवा, बीमा और पेंशन जैसी सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा को विस्तारित करना, विशेषकर अनौपचारिक श्रमिकों के लिए, गरिमामय जीवन सुनिश्चित करता है। ई-श्रम पोर्टल को प्रभावी रूप से लागू करना चाहिए ताकि अनौपचारिक श्रमिकों को ट्रैक और सुरक्षित किया जा सके।

6. **उद्यमिता और स्टार्टअप को प्रोत्साहन**

स्टार्ट अप इंडिया और स्टैंड अप इंडिया जैसे कार्यक्रमों को युवाओं के लिए केंद्रित किया जाना चाहिए, जिसमें ऋण, मार्गदर्शन और बाजार से जुड़ाव की सुविधाएँ मिलें। उद्यमिता नौकरी चाहने वालों को नौकरी देने वाले में बदल सकती है, जिससे बेरोज़गारी का दबाव कम हो सकता है।

7. **शासन और वितरण प्रणाली को मजबूत बनाना**

नीतियों के कुशल कार्यान्वयन, भ्रष्टाचार की रोकथाम और डिजिटल गवर्नेंस के माध्यम से जवाबदेही बढ़ाकर सुधारों का प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। डिजिटल इंडिया और जन-धन-आधार-मोबाइल (JAM) ट्रिनिटी जैसी पहलें सरकारी योजनाओं की अंतिम छोर तक पहुँच सुनिश्चित करें।

निष्कर्ष

भारत की जनसांख्यिकीय लाभांश एक **एक बार मिलने वाला ऐतिहासिक अवसर** है, लेकिन यदि समुचित संरचनात्मक सुधार नहीं किए गए, तो यह जनसांख्यिकीय बोझ में बदल सकता है। आगे का रास्ता समावेशी रोज़गार सृजन, व्यापक नीतिगत सुधारों और युवाओं व महिलाओं को सशक्त बनाने में निहित है। इससे यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि जनसांख्यिकी आर्थिक समृद्धि में बदले और भारत भविष्य में एक वैश्विक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर सके।

10. भारतीय ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।

वैश्वीकरण (Globalization) का तात्पर्य विश्व स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं, संस्कृतियों और समाजों के एकीकरण से है, जो उदारीकरण, निजीकरण और तकनीकी प्रगति द्वारा संचालित होता है। इसने जहाँ शहरी भारत को परिवर्तित किया है, वहीं इसके प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों तक भी पहुँचे हैं, जिससे अवसरों और चुनौतियों दोनों का आगमन हुआ है।

ग्रामीण भारत पर वैश्वीकरण का सामाजिक प्रभाव

1. **संचार और सूचना तक पहुँच का विस्तार**

   टेलीविज़न, इंटरनेट और मोबाइल प्रौद्योगिकी के प्रसार ने ग्रामीण समुदायों को वैश्विक सूचना तंत्र से जोड़ दिया है। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जिससे ग्रामीण-शहरी सूचना अंतर कम हुआ है, यद्यपि डिजिटल अशिक्षा अब भी पूर्ण लाभ को सीमित करती है।

2. **सामाजिक आकांक्षाओं में परिवर्तन**

   मीडिया के माध्यम से शहरी जीवनशैली, वैश्विक प्रवृत्तियाँ और उपभोक्तावाद के संपर्क में आने से ग्रामीण युवाओं की आकांक्षाएँ बढ़ी हैं। यद्यपि इससे शिक्षा और करियर की महत्वाकांक्षाएँ जन्म लेती हैं, परंतु जब स्थानीय अवसर इन अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाते तो सामाजिक-सांस्कृतिक तनाव उत्पन्न होता है।

3. **पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं में बदलाव**

   कुछ क्षेत्रों में वैश्वीकरण ने जाति और संबंध आधारित पारंपरिक पदानुक्रम को कमज़ोर किया है, जिससे व्यक्तिगत गतिशीलता को बढ़ावा मिला है। परंतु अन्य स्थानों पर इससे पहचान-आधारित राजनीति और साम्प्रदायिक तनाव भी बढ़े हैं, जो ग्रामीण सामाजिक संबंधों में जटिल परिवर्तन को दर्शाते हैं।

4. **लैंगिक समीकरणों में परिवर्तन**

   लैंगिक समानता के वैश्विक आदर्शों के संपर्क में आने से कुछ ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और माइक्रोफाइनेंस पहलों के माध्यम से सशक्त बनाया गया है। हालाँकि गहराई से जमी हुई पितृसत्ता और सीमित आर्थिक स्वतंत्रता कई क्षेत्रों में लैंगिक परिवर्तन को अब भी बाधित करती है।

5. **प्रवासन और पारिवारिक विघटन**

   वैश्वीकरण प्रेरित ग्रामीण से शहरी प्रवासन ने संयुक्त परिवारों के विघटन को जन्म दिया है और एकल परिवारों का उदय हुआ है। जहाँ इससे युवा पीढ़ी को स्वतंत्रता मिली है, वहीं इससे पारंपरिक सहारा तंत्र कमज़ोर हुए हैं, जिससे बुज़ुर्गों की सामाजिक सुरक्षा प्रभावित हुई है।

6. **उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक एकरूपता का उदय**

   वैश्विक ब्रांड और उत्पाद ग्रामीण बाज़ारों में प्रवेश कर चुके हैं, जिससे उपभोग की प्रवृत्तियों में बदलाव आया है। यद्यपि इससे विकल्प और विविधता बढ़ी है, परंतु यह स्थानीय परंपराओं, हस्तशिल्प और स्वदेशी सांस्कृतिक प्रथाओं को खतरे में डालता है, जिससे सांस्कृतिक एकरूपता बढ़ती है।

7. **स्वास्थ्य जागरूकता और जीवनशैली में बदलाव**

   स्वास्थ्य संबंधी जानकारी में वृद्धि से कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता और पोषण में सुधार हुआ है। परंतु बदलते खानपान और कम सक्रिय जीवनशैली के कारण मधुमेह और उच्च रक्तचाप जैसी जीवनशैली जनित बीमारियाँ बढ़ रही हैं, जो ग्रामीण भारत में एक नया स्वास्थ्य संकट उत्पन्न कर रही हैं।

ग्रामीण भारत पर वैश्वीकरण का आर्थिक प्रभाव

1. **कृषि का व्यवसायीकरण और बाज़ार से जुड़ाव**

   वैश्वीकरण ने ग्रामीण कृषि को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों से जोड़ा है, जिससे नकदी फसलों की खेती को बढ़ावा मिला है। परंतु मूल्य अस्थिरता और वैश्विक माँग पर निर्भरता ने किसानों की असुरक्षा बढ़ाई है, जैसा कि प्याज़ या कपास मूल्य संकट के समय देखा गया।

2. **बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ग्रामीण बाज़ारों में प्रवेश**

MNCs ने ग्रामीण भारत में खुदरा, कृषि-व्यवसाय और उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में विस्तार किया है। इससे ग्रामीण रोज़गार और बाज़ार पहुँच में वृद्धि हुई है, परंतु यह स्थानीय व्यापारियों और लघु उद्योगों को खतरे में डालता है, जिससे पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था बाधित होती है।

3. **ग्रामीण गैर-कृषि रोज़गार का विकास**

ग्रामीण BPO, पर्यटन और निर्माण जैसे नए क्षेत्र गैर-कृषि रोज़गार के अवसरों को बढ़ा रहे हैं। इससे कृषि पर अत्यधिक निर्भरता में कमी आती है, परंतु इन क्षेत्रों की नौकरियाँ अक्सर अस्थिर और कम वेतन वाली होती हैं, जिससे दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता में बाधा आती है।

4. **बुनियादी ढाँचे का विकास और कनेक्टिविटी**

वैश्वीकरण ने ग्रामीण सड़कों, दूरसंचार और ऊर्जा अवसंरचना में सार्वजनिक और निजी निवेश को प्रोत्साहित किया है। बेहतर कनेक्टिविटी से गतिशीलता, बाज़ार एकीकरण और सेवाओं की डिलीवरी में सुधार हुआ है, यद्यपि दूरस्थ गाँवों में अंतिम मील तक पहुँचना अब भी एक चुनौती है।

5. **कौशल अंतर और सीमित औद्योगिकीकरण**

वैश्वीकरण के कारण कुशल श्रम की माँग बढ़ी है, परंतु ग्रामीण भारत में शिक्षा और प्रशिक्षण अधोसंरचना की कमी से कौशल स्तर निम्न बना हुआ है। इससे ग्रामीण युवा उच्च मूल्य उद्योगों से बाहर रह जाते हैं और उन्हें असंगठित क्षेत्र के कम वेतन वाले कार्यों तक ही सीमित रहना पड़ता है।

6. **माइक्रोफाइनेंस और SHGs का विस्तार**

वैश्विक माइक्रोफाइनेंस मॉडल से प्रेरित SHG आंदोलन ने ग्रामीण महिलाओं को छोटे ऋणों और आय-सृजन गतिविधियों के माध्यम से सशक्त किया है। परंतु उच्च ब्याज दरें और वित्तीय साक्षरता की कमी कई बार महिलाओं को ऋण जाल में फँसा देती है, जिससे आर्थिक सशक्तिकरण सीमित रह जाता है।

7. **पर्यावरणीय क्षरण और संसाधनों का दोहन**

वैश्विक बाज़ारों की माँग को पूरा करने के लिए वाणिज्यिक कृषि और संसाधन दोहन ने वनों की कटाई, मृदा क्षरण और जल संकट को जन्म दिया है। यह अस्थायी गतिविधियाँ पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित करती हैं, जिससे विशेषकर आदिवासी और सीमांत किसानों की आजीविका खतरे में पड़ती है।

निष्कर्ष:

वैश्वीकरण ने ग्रामीण भारत में परिवर्तन के अवसर प्रदान किए हैं, परंतु इसके साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ भी बढ़ी हैं। इसके वास्तविक लाभ को सुनिश्चित करने के लिए **समावेशी नीतियाँ**, **कौशल विकास**, **सतत कृषि** और **सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण** की आवश्यकता है। तभी ग्रामीण भारत वैश्विक युग में अपनी सच्ची क्षमता को प्राप्त कर सकेगा।

11. नागर, द्रविड़ और वेसर शैली की मंदिर स्थापत्य विशेषताओं का परीक्षण कीजिए, उनके क्षेत्रीय भिन्नताओं और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व को रेखांकित कीजिए।

भारतीय मंदिर वास्तुकला कला, आध्यात्मिकता और क्षेत्रीय विविधता का एक समन्वयात्मक विकास है। नागर (उत्तर भारत), द्राविड़ (दक्षिण भारत) और वेसर (दक्षिण-मध्य भारत) शैली विशिष्ट वास्तुशिल्प परंपराओं के रूप में उभरीं, जो क्षेत्रीय सौंदर्यबोध, धार्मिक प्रतीकों और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को दर्शाती हैं। इन सभी ने मिलकर भारत की वास्तुकला धरोहर को समृद्ध किया और वैश्विक स्तर पर बाद की वास्तुकला आंदोलनों को प्रभावित किया।

नागर, द्राविड़ और वेसर मंदिर स्थापत्य शैलियों की तुलनात्मक विशेषताएँ

विशेषताएँ	नागर शैली (उत्तर भारत)	द्रविड़ शैली (दक्षिण भारत)	वेसर शैली (दक्षिण-मध्य/संकर शैली)
मुख्य शिखर (टॉवर)	वक्राकार (रेखा प्रसाद शिखर)	पिरामिडीय आकार (विमान जिसमें छोटी-छोटी परतें होती हैं)	वक्राकार या तारे के आकार का, नागर और द्राविड़ तत्वों का मिश्रण
आधार योजना	वर्ग या आयताकार गर्भगृह के साथ अक्षीय मंडप	वर्गाकार गर्भगृह, घेरेदार प्राकार और स्तंभयुक्त मंडप	तारे के आकार की या जटिल आधार योजना के साथ स्तंभित हॉल
द्वार (गोपुरम)	न्यून या अनुपस्थित, छोटे प्रवेशद्वार	विशाल गोपुरम, जो गर्भगृह से ऊँचे होते हैं	मध्यम आकार के, दोनों परंपराओं का समन्वय
सजावटी तत्व	समृद्ध बाहरी नक्काशी, आमलक, कलश	द्वारपाल, यालि स्तंभ, विमानों की जटिल मूर्तियाँ	उत्तर और दक्षिण दोनों की मिश्रित मूर्तिकला और प्रतीक
उदाहरण	खजुराहो, कंदरिया महादेव, लिंगराज मंदिर	बृहदेश्वर, मीनाक्षी और शोर मंदिर	होयसलेश्वर मंदिर, पट्टदकल समूह
उपयोग की गई सामग्री	बलुआ पत्थर, ग्रेनाइट, संगमरमर	ग्रेनाइट, बलुआ पत्थर	सॉपस्टोन, ग्रेनाइट
संस्कृतिक प्रसार	उत्तर, मध्य और पूर्वी भारत	तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश	कर्नाटक, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्से

मंदिर वास्तुकला में क्षेत्रीय विविधताएँ

1. **ओडिशा की नागर शैली**

   ओडिशा के लिंगराज और कोणार्क सूर्य मंदिर जैसे मंदिरों में विशिष्ट ऊर्ध्वाधर शिखर, जगति (मंच) और समृद्ध मूर्तियाँ होती हैं। मध्य भारत की नागर शैली की तुलना में यहाँ क्षैतिज पट्टियों में नक्काशी और अर्द्धवृत्ताकार द्वार मिलते हैं, जो नागर सौंदर्यबोध की क्षेत्रीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

2. **खजुराहो और मध्य भारतीय नागर शैली**

   चंदेल वंश के खजुराहो मंदिरों में कामुक मूर्तियाँ, ऊँचे मंच और समूहबद्ध शिखर होते हैं। यह क्षेत्रीय विकास एक अनूठी सौंदर्य दृष्टि प्रदान करता है और मानव जीवन के उत्सव को दर्शाता है, जो पश्चिम भारत के माउंट आबू के दिलवाड़ा जैसे सादे मंदिरों से भिन्न है।

3. **तमिल द्राविड़ मंदिरों में विशाल गोपुरम**

   मदुरै का मीनाक्षी मंदिर और श्रीरंगम मंदिर जैसे द्राविड़ मंदिरों में बहु-स्तरीय, रंग-बिरंगे और मूर्तिकला से समृद्ध विशाल गोपुरम होते हैं। यह क्षेत्रीय विशेषता जुलूस मार्ग और सामूहिक भागीदारी को महत्व देती है, जिससे मंदिर शहरी जीवन के केंद्र बन जाते हैं, जबकि नागर मंदिर प्रायः एकांत पहाड़ियों पर स्थित होते हैं।

4. **चोल और पल्लव वंश का द्राविड़ शैली में योगदान**

   तंजावुर स्थित बृहदेश्वर मंदिर, जो चोलों द्वारा निर्मित है, ने एकाश्म विमानों की परंपरा शुरू की, जो साम्राज्यिक शक्ति का प्रतीक है। पल्लवों द्वारा निर्मित महाबलीपुरम के शोर मंदिर जैसी शिलाखंड मंदिर वास्तुकला, गुफा मंदिरों से संरचनात्मक मंदिरों की ओर क्षेत्रीय संक्रमण को दर्शाती है।

5. **पूर्व भारत में कलिंग प्रभाव**

   भुवनेश्वर और कोणार्क के सूर्य मंदिरों में रथ के आकार का गर्भगृह और परिक्रमा पथ होते हैं। ये क्षेत्रीय भिन्नताएँ खगोलीय संरेखण और सूर्य उपासना को दर्शाती हैं, जो क्षेत्रीय आध्यात्मिकता और वैज्ञानिक सोच के अद्वितीय समन्वय को दर्शाती हैं।

भारत में मंदिर स्थापत्य की सामाजिक-सांस्कृतिक महत्ता

1. **सामाजिक जीवन के केंद्र के रूप में मंदिर**

   मंदिर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र रहे हैं। पुरी की रथयात्रा और तिरुपति का ब्रह्मोत्सव जैसे उत्सव मंदिरों की सामुदायिक एकजुटता और सामूहिक पहचान में भूमिका को दर्शाते हैं, जिससे वे केवल धार्मिक स्थल नहीं रह जाते।

2. **राजनीतिक शक्ति और संरक्षण का प्रतिबिंब**

   बृहदेश्वर जैसे मंदिर साम्राज्यिक शक्ति और शाही वैधता का प्रतीक बने। राजाओं ने मंदिर निर्माण के माध्यम से अपने क्षेत्रीय नियंत्रण और आध्यात्मिक अधिकार को स्थापित किया, जो यह दिखाता है कि भारतीय समाज में राजनीति और धर्म आपस में गहराई से जुड़े थे।

3. **ग्रामीण और शहरी भारत के आर्थिक केंद्र**

   बड़े मंदिर भूमि अनुदानों, व्यापार और शिल्पकारियों का प्रबंधन करते थे, जिससे वे आर्थिक संस्थानों के रूप में कार्य करते थे। श्रीरंगम और रामेश्वरम जैसे मंदिरों ने बाजार, कारीगर और तीर्थयात्रा आधारित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया, जिससे स्थानीय और क्षेत्रीय आर्थिक विकास हुआ।

4. **कला और संस्कृति का संरक्षण**

   मंदिरों ने नृत्य, संगीत और मूर्तिकला को संरक्षण और पोषण दिया। भरतनाट्यम और ओडिसी जैसी कला विधाएँ मंदिर अनुष्ठानों से उत्पन्न हुईं। मंदिर सांस्कृतिक भंडारगृह बन गए, जिन्होंने क्षेत्रीय कलाओं को संरक्षित किया और पीढ़ियों तक ज्ञान को प्रेषित किया।

5. **आध्यात्मिक और दार्शनिक महत्ता**

   मंदिर ब्रह्मांडीय सिद्धांतों का प्रतीक होते हैं, जहाँ शिखर, गर्भगृह और मंडप जैसे वास्तु तत्व सार्वभौमिक व्यवस्था को दर्शाते हैं। कोणार्क का सूर्य मंदिर खगोल विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय दर्शाता है, जो भारत की समग्र विश्वदृष्टि को प्रतिबिंबित करता है।

6. **सामुदायिक पहचान निर्माण का माध्यम**

   मंदिरों ने क्षेत्रीय और धार्मिक पहचान को प्रोत्साहित किया, जिससे समुदायों को अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता व्यक्त करने का मंच मिला। उदाहरणस्वरूप, गुजरात के जैन मंदिर व्यापारी वर्ग के संरक्षण को दर्शाते हैं, जो स्थापत्य शैली के माध्यम से सामुदायिक पहचान को आकार देते हैं।

7. **शिक्षा और ज्ञान के केंद्र**

   कांचीपुरम और वाराणसी जैसे कई मंदिर शिक्षा केंद्र के रूप में कार्य करते थे, जहाँ पुस्तकालय, पाठशालाएँ और विद्वत वाद-विवाद होते थे। ये मंदिर दर्शन, खगोलविज्ञान और भाषा में ज्ञान प्रसार में योगदान देते थे।

भारत की मंदिर वास्तुकला इसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन की विविधता, एकता और समृद्धता को दर्शाती है। इन स्थापत्य चमत्कारों को संरक्षित और प्रोत्साहित करने के लिए समावेशी विरासत नीतियाँ, सामुदायिक भागीदारी और सतत पर्यटन की आवश्यकता है। इससे सांस्कृतिक निरंतरता सुनिश्चित की जा सकती है और भारत की वास्तु विरासत को वैश्विक प्रेरणा और राष्ट्रीय गौरव का स्रोत बनाया जा सकता है।

12. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं के योगदान को उजागर कीजिए और उनके भागीदारी से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तनों का विश्लेषण कीजिए।

भारत का स्वतंत्रता संग्राम केवल पुरुषों द्वारा संचालित नहीं था; इसमें महिलाओं की भी असाधारण भागीदारी रही, जो विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों और सामाजिक वर्गों से आई। विरोध प्रदर्शनों, क्रांतिकारी गतिविधियों, नेतृत्व भूमिकाओं और जमीनी स्तर की लामबंदी में उनकी सक्रिय भागीदारी ने सामाजिक परिवर्तन को गति दी, पितृसत्तात्मक ढाँचों को चुनौती दी और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की पहचान को पुनर्परिभाषित किया।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान

1. **क्रांतिकारी महिला नेता**

   रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हज़रत महल और रानी गाइदिनल्यू जैसी महिलाओं ने ब्रिटिश सेना के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध का नेतृत्व किया। उनका नेतृत्व जनआंदोलनों के लिए प्रेरणा बना और इस धारणा को तोड़ा कि महिलाएँ केवल घरेलू दायरे तक सीमित हैं। उन्होंने युद्ध और नेतृत्व में महिलाओं की क्षमता को स्थापित किया।

2. **असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलनों में जन लामबंदी**

कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू और कमला नेहरू जैसी महिलाओं ने नमक मार्च, शराब की दुकानों का बहिष्कार और विदेशी वस्त्रों की होली जैसे आंदोलनों का नेतृत्व किया। उनकी व्यापक भागीदारी ने राष्ट्रीय आंदोलनों को समावेशी जन संघर्ष में बदल दिया, जिससे शहरी और ग्रामीण, सभी वर्गों की महिलाएँ संगठित हुईं।

3. **राजनीतिक संगठनों में नेतृत्व**

महिलाओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन और कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया जैसे संगठनों में प्रमुख भूमिका निभाई। एनी बेसेंट और अरुणा आसफ़ अली जैसी नेताओं ने महिला राजनीतिक चेतना का प्रतीक बनकर राष्ट्र निर्माण और संवैधानिक अधिकारों के विमर्श में योगदान दिया।

4. **क्रांतिकारी गतिविधियों में भागीदारी**

कल्पना दत्त, बीना दास और प्रीतिलता वाडेदार जैसी महिलाओं ने सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधियों, हत्या प्रयासों और जेल आंदोलनों में भाग लिया। उनकी भागीदारी ने पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती दी और यह सिद्ध किया कि महिलाएँ भी उग्र उपनिवेश-विरोधी कार्रवाइयों की अगुआई कर सकती हैं।

5. **जमीनी स्तर और किसान आंदोलनों में सहभागिता**

चंपारण सत्याग्रह, तेलंगाना विद्रोह और तेभागा आंदोलन में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ग्रामीण महिलाओं ने औपनिवेशिक राजस्व नीतियों का विरोध किया, यह दर्शाते हुए कि जमीनी स्तर की सक्रियता केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी, और इसने स्वतंत्रता आंदोलन का सामाजिक आधार विस्तारित किया।

6. **सामाजिक सुधार और शिक्षा में योगदान**

सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई और बेगम रुकैया जैसी महिलाओं ने महिला शिक्षा, जातिवाद विरोधी सुधारों और लैंगिक समानता के लिए कार्य किया। उनके प्रयासों ने राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक मुक्ति को भी गति दी, जिससे स्वतंत्रता के बाद महिला अधिकारों की नींव पड़ी।

7. **अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व**

विजयलक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं ने संयुक्त राष्ट्र सहित वैश्विक मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व किया और भारत की छवि को एक आधुनिक, समावेशी लोकतंत्र के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी अंतर्राष्ट्रीय भूमिकाओं ने यह दिखाया कि भारतीय महिलाएँ कूटनीति और वैश्विक नेतृत्व में भी योगदान दे सकती हैं।

महिलाओं की भागीदारी से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन

1. **महिलाओं की सार्वजनिक पहचान का पुनर्परिभाषण**

प्रदर्शनों, राजनीतिक संगठनों और सशस्त्र संघर्षों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने 'केवल घरेलू स्त्री' की अवधारणा को चुनौती दी। इससे महिलाओं की राष्ट्र निर्माण और सार्वजनिक निर्णय लेने की भूमिका सशक्त हुई, जो स्वतंत्र भारत के महिला आंदोलनों की प्रेरणा बनी।

2. **जाति और वर्ग बाधाओं को तोड़ना**

सरोजिनी नायडू जैसी उच्चवर्गीय नेताओं से लेकर ग्रामीण खेतिहर महिलाओं तक, सभी वर्गों की महिलाओं ने एक साथ भाग लिया। यह व्यापक सहभागिता जातिगत और वर्गीय सीमाओं को पार कर सामाजिक एकता को बढ़ावा देती है और राजनीतिक सक्रियता का लोकतंत्रीकरण करती है।

3. **महिला साक्षरता और शिक्षा को बढ़ावा**

स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी ने महिला शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित किया। सावित्रीबाई फुले और बेगम रुकैया जैसी कार्यकर्ताओं ने बालिका शिक्षा की नींव रखी, जिससे स्वतंत्रता के बाद साक्षरता और शैक्षिक सुधार को प्रोत्साहन मिला।

4. **महिला राजनीतिक अधिकारों का संवर्धन**

महिलाओं के नेतृत्व ने सार्वभौमिक मताधिकार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की माँगों को बल दिया। भारत के संविधान में महिलाओं को समान राजनीतिक अधिकार देना इस राजनीतिक सक्रियता की वैधता को दर्शाता है।

5. **महिलाओं की कानूनी और सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करना**

स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की सक्रियता ने हिंदू कोड बिल जैसे विधिक सुधारों को प्रेरित किया, जिससे उत्तराधिकार, विवाह और दत्तक ग्रहण में लैंगिक समानता को बढ़ावा मिला। उनके संघर्षों ने स्वतंत्र भारत में लिंग-संवेदनशील कानूनों के लिए सामाजिक आधार तैयार किया।

6. **महिला केंद्रित संगठनों की स्थापना**

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन जैसे संगठन अस्तित्व में आए, जिन्होंने महिला शिक्षा, विधिक अधिकार और सामाजिक सुधार पर कार्य किया। इन संस्थानों ने स्वतंत्रता आंदोलन के बाद भी महिला नेतृत्व को जीवित रखा और नीति तथा पक्षधरता पर प्रभाव डाला।

7. **महिला कार्यबल भागीदारी को प्रोत्साहन**

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति ने उनके कार्यबल में प्रवेश को सामान्यीकृत किया, जिससे आर्थिक सशक्तिकरण को बल मिला। यह प्रारंभिक भागीदारी भविष्य में औपचारिक रोज़गार में महिलाओं की भागीदारी का आधार बनी।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी ने लिंग भूमिकाओं को पुनर्परिभाषित किया, पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती दी और भविष्य के लैंगिक अधिकार आंदोलनों को प्रेरित किया। हालाँकि, आज भी प्रणालीगत बाधाएँ बनी हुई हैं। आगे का रास्ता महिलाओं के योगदान को मुख्यधारा में लाने, लिंग-संवेदनशील नीतियों को मजबूत करने और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में महिला नेतृत्व को सशक्त करने में निहित है—ताकि वे भारत की निरंतर राष्ट्र-निर्माण यात्रा में अपना न्यायोचित स्थान प्राप्त कर सकें।

13. ब्रिटिश शासन को चुनौती देने में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के योगदान का विश्लेषण कीजिए। यह मुख्यधारा की कांग्रेस-नेतृत्व वाली राजनीति के साथ किस प्रकार पूरक या विरोधी था, स्पष्ट कीजिए।

भारत में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद (Revolutionary Nationalism) का तात्पर्य ऐसे आंदोलनों और व्यक्तियों से है जिन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने के लिए सशस्त्र प्रतिरोध, गुप्त संगठनों और प्रत्यक्ष कार्रवाइयों का सहारा लिया। जबकि मुख्यधारा की कांग्रेस राजनीति संवैधानिक तरीकों पर आधारित थी, वहीं क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश प्रशासन की नींव को हिला दिया, युवाओं को प्रेरित किया और जनचेतना को उग्र रूप दिया। इससे स्वतंत्रता आंदोलन में पूरक और विरोधाभासी दोनों प्रवृत्तियाँ एक साथ उभरीं।

ब्रिटिश शासन को चुनौती देने में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का योगदान

1. **ब्रिटिश सत्ता को मनोवैज्ञानिक आघात**

खुदीराम बोस, भगत सिंह और चंद्रशेखर आज़ाद जैसे क्रांतिकारियों ने हत्या, बम विस्फोट और छापामारी जैसी कार्रवाइयाँ कीं, जिससे ब्रिटिश प्रशासन की आत्मविश्वास पर आघात पहुँचा। काकोरी ट्रेन डकैती (1925) जैसे कृत्यों ने यह दिखा दिया कि ब्रिटिश शासन अजेय नहीं है और इससे उपनिवेशवादियों में भय व्याप्त हुआ।

2. **युवाओं की राष्ट्रवादी सक्रियता में भागीदारी**

क्रांतिकारी गतिविधियों ने भारतीय युवाओं को उद्वेलित किया और उन्हें स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ दिया। हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (HSRA) और अनुशीलन समिति जैसे संगठन उग्र युवाओं के लिए मंच बने, जिससे राष्ट्रवादी आंदोलन का आधार मुख्यधारा की राजनीति से परे भी विस्तृत हुआ।

3. **बलिदान और शहादत के प्रतीकात्मक कार्य**

भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी ने उन्हें राष्ट्रीय प्रतीकों में परिवर्तित कर दिया। उनकी शहादत ने जनआंदोलनों को प्रेरित किया और व्यक्तिगत विद्रोह को सामूहिक साहस और प्रतिरोध के प्रतीक में बदल दिया, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन को भावनात्मक और वैचारिक बल मिला।

4. **भारतीय संघर्ष का अंतर्राष्ट्रीयकरण**

रासबिहारी बोस और सुभाष चंद्र बोस जैसे क्रांतिकारियों ने जापान और जर्मनी जैसे देशों से अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन स्थापित करने का प्रयास किया, जिससे भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को वैश्विक मंच पर मान्यता मिली और ब्रिटिश साम्राज्य की वैधता को चुनौती दी गई।

5. **स्वतंत्रता आंदोलन में तरीकों की विविधता**

क्रांतिकारियों ने सशस्त्र विद्रोह को अपनाकर आंदोलन के तरीकों में विविधता लाई। जहाँ कांग्रेस जन आंदोलनों पर आधारित थी, वहीं क्रांतिकारियों ने वैकल्पिक प्रतिरोध के रूप प्रस्तुत किए, जिससे उपनिवेशवाद के विरुद्ध रणनीतिक दृष्टिकोण का विस्तार हुआ।

6. **भविष्य के सशस्त्र आंदोलनों के लिए प्रेरणा**

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद ने स्वतंत्रता के बाद के आंदोलनों जैसे सुभाष चंद्र बोस के आज़ाद हिंद फौज को प्रेरित किया। उनकी उग्र भावना ने अन्य उपनिवेशों के स्वतंत्रता सेनानियों को भी प्रेरित किया और वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के वैश्विक प्रतीक बन गए।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद और कांग्रेस राजनीति के बीच सामंजस्य के बिंदु

1. **राष्ट्रीय मुक्ति का साझा लक्ष्य**

कांग्रेस और क्रांतिकारियों दोनों का उद्देश्य औपनिवेशिक शासन को समाप्त करना था। भले ही उनके तरीके अलग थे, परंतु दोनों ने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण साझा किया और जन समर्थन को विविध रूपों में संगठित किया, जिससे ब्रिटिश शासन पर बहुपक्षीय दबाव बना।

2. **जनमानस पर पारस्परिक भावनात्मक प्रभाव**

क्रांतिकारी बलिदानों ने कांग्रेस नेतृत्व वाले आंदोलनों को ऊर्जा प्रदान की। उदाहरण के लिए, भगत सिंह की फाँसी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को जनसमर्थन दिलाने में मदद की, जिससे क्रांतिकारी कार्रवाइयाँ कांग्रेस की जन लामबंदी को पूरक सिद्ध हुईं।

3. **ब्रिटिश दमन के प्रति साझा विरोध**

जालियाँवाला बाग नरसंहार और रौलट एक्ट जैसी ब्रिटिश क्रूरताओं के विरुद्ध दोनों समूहों ने विरोध दर्ज किया। इस साझा विरोध ने औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध नैतिक उच्चता को स्थापित किया और राष्ट्रव्यापी एकता को मज़बूत किया।

4. **बाद के वर्षों में वैचारिक समन्वय**

जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं ने क्रांतिकारी भावना की सराहना की और कांग्रेस के दृष्टिकोण में समाजवादी तथा उग्र विचारों को स्थान दिया। इससे राष्ट्रवाद की उदार और उग्र धाराओं में वैचारिक समन्वय का संकेत मिला।

5. **उपनिवेशवाद पर संयुक्त दबाव**

जहाँ कांग्रेस ने अहिंसात्मक असहयोग और सविनय अवज्ञा के माध्यम से जन दबाव बनाया, वहीं क्रांतिकारियों ने गुप्त हिंसात्मक कार्यवाहियों से ब्रिटिश शासन को चुनौती दी। इससे ब्रिटिश प्रशासन को दोहरा दबाव झेलना पड़ा, जिससे उसकी स्थिरता डगमगाई।

6. **राष्ट्रवादी साहित्य में संयुक्त योगदान**

दोनों धाराओं ने ऐसे पत्रक, भाषण और लेखन प्रकाशित किए, जिससे जनमत को आकार मिला। क्रांतिकारी पत्रिकाएँ जैसे "वंदे मातरम्" और कांग्रेस का "यंग इंडिया" स्वतंत्रता और न्याय की अवधारणाओं को जनचेतना में ले गए।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद और कांग्रेस राजनीति के बीच टकराव के बिंदु

1. **तरीकों में विरोध: हिंसा बनाम अहिंसा**

गांधीजी की अहिंसा की नीति क्रांतिकारियों की हिंसात्मक रणनीति से मूलतः टकराती थी। गांधीजी ने काकोरी जैसे कृत्यों की सार्वजनिक आलोचना की और इन्हें नैतिक रूप से अस्वीकार्य बताया, जिससे कांग्रेस और क्रांतिकारियों के बीच वैचारिक टकराव उत्पन्न हुआ।

2. **संगठनात्मक अलगाव**

क्रांतिकारी समूह भूमिगत तरीके से कार्य करते थे और मुख्यधारा की राजनीति से अलग-थलग रहते थे। कांग्रेस ने उन्हें सीमांत तत्व माना, जिससे संस्थागत सहयोग सीमित रहा और उनकी राजनीतिक प्रभावशीलता कम हुई।

3. **ब्रिटिश द्वारा विभाजन का लाभ उठाना**

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को उदारवादी और क्रांतिकारियों को आतंकवादी के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे दमन को औचित्य दिया गया। इससे औपनिवेशिक प्रशासन ने हिंसात्मक प्रतिरोध को बदनाम किया और उदारवादी वार्ताओं को साध लिया, जिससे राष्ट्रवादी एकता कमज़ोर हुई।

4. **तात्कालिक कार्रवाई बनाम दीर्घकालिक रणनीति**

   क्रांतिकारी गतिविधियाँ अक्सर प्रभावशाली हिंसात्मक कार्रवाइयों पर केंद्रित थीं, जिनका जन समर्थन और स्थायित्व सीमित था। इसके विपरीत, कांग्रेस की रणनीतियाँ दीर्घकालिक थीं और राजनीतिक चेतना को व्यवस्थित रूप से जगाने पर आधारित थीं, जिससे रणनीतिक मतभेद उत्पन्न हुए।

5. **क्रांतिकारी आंदोलनों में सीमित जन सहभागिता**

   कांग्रेस के आंदोलनों में जहाँ व्यापक जन भागीदारी थी, वहीं क्रांतिकारी गतिविधियाँ छोटे, गुप्त समूहों तक सीमित थीं। इससे उनका जन प्रभाव सीमित रहा और वे व्यापक राष्ट्रवादी लहर से अलग-थलग रह गए।

6. **राजनीतिक दृष्टिकोण में मतभेद**

   कांग्रेस का रुझान लोकतांत्रिक और संवैधानिक शासन की ओर था, जबकि कुछ क्रांतिकारी समाजवाद या सशस्त्र अधिनायकवाद की ओर झुकाव रखते थे। यह वैचारिक भिन्नता स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक दृष्टिकोणों में दीर्घकालिक अंतर का कारण बनी।

निष्कर्षत:

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद ने स्वतंत्रता संग्राम को ऊर्जा प्रदान की और प्रतिरोध के वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत किए, जो कभी कांग्रेस की मुख्यधारा राजनीति के पूरक बने, तो कभी उसके साथ टकराव में भी आए। इन दोनों धाराओं ने मिलकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक और बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया।

14. कैसे वर्साय संधि ने यूरोप में भविष्य के संघर्षों के बीज बोए? इसके भू-राजनीतिक और आर्थिक प्रभावों की विवेचना कीजिए।

वर्साय संधि (1919), जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद हस्ताक्षरित की गई थी, का उद्देश्य जर्मनी को दंडित करना और भविष्य में युद्धों को रोकना था। हालाँकि, इसके कठोर क्षेत्रीय, सैन्य और आर्थिक प्रावधानों ने जर्मनी में आक्रोश को जन्म दिया, यूरोपीय भू-राजनीति को अस्थिर कर दिया और अर्थव्यवस्थाओं को पंगु बना दिया। इसने उग्रवाद के लिए उपजाऊ जमीन तैयार की, जो अंततः **द्वितीय विश्व युद्ध** का कारण बनी।

एक समाधान के रूप में वर्साय संधि ने कैसे भविष्य के संघर्ष को जन्म दिया

1. **कठोर युद्ध अपराध धारा (War Guilt Clause)**

   "युद्ध अपराध धारा" (अनुच्छेद 231) ने प्रथम विश्व युद्ध के लिए केवल जर्मनी को दोषी ठहराया, जिससे जर्मन जनता को अपमानित होना पड़ा और वाइमर गणराज्य की वैधता को ठेस पहुँची। इस राष्ट्रीय अपमान ने कट्टर विचारधाराओं, जैसे नाज़ीवाद, को जनसमर्थन दिया और भविष्य के सैन्यवाद की नींव रखी।

2. **अव्यवहारिक क्षतिपूर्ति बोझ**

   जर्मनी को 132 अरब गोल्ड मार्क का क्षतिपूर्ति भुगतान करने के लिए बाध्य किया गया, जिससे हाइपरइंफ्लेशन, आर्थिक पतन और भारी बेरोज़गारी हुई। इस आर्थिक हताशा ने लोकतंत्र-विरोधी आंदोलनों को जन्म दिया, और हिटलर के उदय और विस्तारवादी नीतियों के लिए मंच तैयार किया।

3. **निरस्त्रीकरण और राष्ट्रीय असुरक्षा**

   जर्मनी की सेना को 100,000 सैनिकों तक सीमित कर दिया गया और भारी हथियारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। यह सैन्य अपमान और असहायता, सैन्य प्रतिशोध की भावना को भड़काते रहे, जिसे 1930 के दशक में नाजी प्रचार ने पुनः सैन्यीकरण और प्रतिशोध के औजार के रूप में प्रयोग किया।

4. **क्षेत्रीय हानि और राष्ट्रवादी आक्रोश**

   जर्मनी ने 13% भूभाग गंवा दिया, जिसमें एल्सास-लोरेन, पोलिश कॉरिडोर और सार बेसिन शामिल थे, जिससे पूर्वी प्रशा अलग-थलग पड़ गया। इन क्षेत्रीय समायोजनों ने राष्ट्रवादी आक्रोश और पुनः प्राप्ति की माँग को जन्म दिया, जिसका उपयोग हिटलर ने आक्रमण को उचित ठहराने में किया।

5. **नई राष्ट्रों में जातीय अल्पसंख्यकों की समस्या**

मध्य और पूर्वी यूरोप में सीमाओं के पुनः निर्धारण से चेकोस्लोवाकिया और यूगोस्लाविया जैसे नए राज्य बने, जिसमें जर्मन और अन्य जातीय अल्पसंख्यक फँस गए। इससे जातीय तनाव और सीमा विवाद उत्पन्न हुए, जिससे यूरोप की स्थिरता खतरे में पड़ी।

6. **वाइमर गणराज्य का कमज़ोर होना**

संधि की शर्तों ने जर्मनी की लोकतांत्रिक नेतृत्व की वैधता को कमज़ोर कर दिया। वाइमर गणराज्य को संधि स्वीकारने के लिए "देशद्रोही" माना गया, जिससे लोकतंत्र-विरोधी ताकतों ने जनता के क्रोध को भुनाया और लोकतांत्रिक संस्थाएँ कमज़ोर हुईं।

7. **समावेशी शांति ढाँचे की असफलता**

इस संधि में जर्मनी को वार्ता प्रक्रिया से बाहर रखा गया, जिससे यह एक "थोपे गए" शांति समझौते में बदल गया। इस कूटनीतिक बहिष्कार ने सुलह की संभावना को समाप्त कर दिया और जर्मनी को अलग-थलग और आहत छोड़ दिया, जिससे दीर्घकालिक स्थिरता का उद्देश्य विफल हो गया।

वर्साय संधि के भू-राजनीतिक परिणाम

1. **आक्रोश और जर्मनी में उग्रवाद का उदय**

जर्मनी के अपमान और अलगाव ने राष्ट्रवादी उग्रवाद को जन्म दिया। प्रतिशोधी वादों से प्रेरित नाज़ीवाद का उदय, युद्ध के बाद के यूरोपीय व्यवस्था के लिए सीधा खतरा बना और महाद्वीप को पुनः संघर्ष की ओर ले गया।

2. **अस्थिर राष्ट्र-राज्यों की रचना**

पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया जैसे नए राष्ट्रों का गठन जातीय विभाजनों पर हुआ। इन राष्ट्रों में आंतरिक जातीय तनाव, सीमा विवाद और भू-राजनीतिक असुरक्षा व्याप्त थी, जिससे पूर्वी यूरोप अस्थिर हुआ।

3. **मध्य यूरोप की शक्ति-संतुलन का पतन**

ऑस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य का विघटन और जर्मनी की कमज़ोरी ने मध्य यूरोप की शक्ति-संतुलन को बिगाड़ा। इस शक्ति शून्य ने इटली, जर्मनी और सोवियत रूस को हस्तक्षेप का अवसर दिया, जिससे क्षेत्रीय अस्थिरता बढ़ी।

4. **पुनरावलोकनवादी गठबंधनों का उदय**

जर्मनी, मुसोलिनी के नेतृत्व वाला इटली और जापान ने वर्साय की शर्तों को पलटने के लिए धुरंधर गठबंधन (Axis Powers) बनाया। यह नया समुच्चय द्वितीय विश्व युद्ध के भू-राजनीतिक ध्रुवों की नींव बना।

5. **सोवियत रूस का अलगाव**

सोवियत रूस को इस संधि से बाहर रखा गया, जिससे पूर्व और पश्चिम के बीच विभाजन और गहरा हुआ। सोवियत नेतृत्व ने इस संधि को पूँजीवादी साजिश के रूप में देखा और इससे पश्चिम विरोधी नीतियाँ बनीं, जिससे वैचारिक ध्रुवीकरण हुआ।

6. **लीग ऑफ नेशन्स की विफलता**

संधि द्वारा स्थापित लीग ऑफ नेशन्स के पास कार्यान्वयन तंत्र नहीं था और इसमें अमेरिका की भागीदारी नहीं थी, जिससे यह अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने में विफल रहा और आक्रामक राष्ट्र बिना दंड के शांति व्यवस्था का उल्लंघन करते रहे।

7. **पश्चिमी शक्तियों की तुष्टिकरण नीति**

एक और युद्ध के भय से ब्रिटेन और फ्रांस ने हिटलर के पुनः सैन्यीकरण और क्षेत्रीय विस्तार को बिना विरोध के स्वीकार कर लिया। यह भू-राजनीतिक भूल आक्रामकों को और साहसी बना गई और द्वितीय विश्व युद्ध की गति को तेज किया।

वर्साय संधि के आर्थिक प्रभाव

1. **जर्मन अर्थव्यवस्था का पतन**

कठोर क्षतिपूर्ति प्रावधानों ने 1923 में हाइपरइंफ्लेशन को जन्म दिया, जिससे मूलभूत वस्तुएँ भी खरीदना कठिन हो गया। जर्मन मध्यम वर्ग, जो लोकतंत्र का स्तंभ था, आर्थिक रूप से नष्ट हो गया, जिससे उग्रवाद और सामाजिक अशांति को बल मिला।

2. **वैश्विक आर्थिक अस्थिरता**

जर्मनी की आर्थिक तबाही ने यूरोपीय बाजारों में प्रभाव डाला, जिससे व्यापार और निवेश कमज़ोर हुए। इस अस्थिरता ने वैश्विक आर्थिक संकट को जन्म दिया, जो 1929 की महामंदी (Great Depression) में परिणत हुआ और वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं को अस्थिर कर दिया।

3. **बेरोज़गारी और सामाजिक अशांति**

जर्मनी में भारी बेरोज़गारी और गरीबी ने श्रमिक वर्ग को उग्र बनाया। इस आर्थिक हताशा ने साम्यवादी विद्रोहों और नाजी प्रचार को समर्थन दिया, जिससे जर्मनी का नाजुक लोकतंत्र अस्थिर हुआ।

4. **यूरोपीय आर्थिक पुनर्निर्माण में बाधा**

क्षतिपूर्ति ने जर्मनी के संसाधनों को समाप्त कर दिया, जिससे वह फ्रांस और ब्रिटेन से वस्तुएँ आयात नहीं कर सका। इससे यूरोप की आर्थिक पुनर्प्राप्ति बाधित हुई और अंतः-यूरोपीय व्यापार नेटवर्क कमज़ोर हो गया।

5. **क्षतिपूर्ति संकट और डॉज़ योजना (Dawes Plan)**

1924 की डॉज़ योजना ने अस्थायी रूप से अमेरिकी ऋणों के माध्यम से क्षतिपूर्ति का पुनर्गठन किया, परंतु इससे जर्मनी अमेरिका के क्रेडिट पर निर्भर हो गया। 1930 के दशक की महामंदी में यह निर्भरता पुनः पतन का कारण बनी।

6. **आत्मनिर्भर और युद्ध आधारित अर्थव्यवस्थाओं का उदय**

वर्साय संधि के तहत आर्थिक अलगाव ने जर्मनी को आत्मनिर्भरता (autarky) की ओर धकेला। बाद में यह नाजी अर्थव्यवस्था के तहत सैन्य-औद्योगिक विस्तार में बदल गया, जिससे जर्मनी युद्ध आधारित अर्थव्यवस्था में बदल गया और आक्रामक विस्तार के लिए तैयार हुआ।

निष्कर्षतः

वर्साय संधि का उद्देश्य यद्यपि शांति स्थापित करना था, परंतु इसने आक्रोश, आर्थिक पतन और भू-राजनीतिक अस्थिरता को जन्म दिया, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध की नींव रखी। इस संधि की विफलताओं से यह शिक्षा मिलती है कि **न्यायसंगत, समावेशी और सतत शांति व्यवस्था** को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिससे किसी भी संघर्ष के बाद का समाधान **न्याय, सुलह और दीर्घकालिक स्थिरता** का संतुलन बनाए रख सके।

15. "राज्यों का एकीकरण व्यावहारिक आदर्शवाद के माध्यम से हासिल किया गया एक राजनीतिक चमत्कार था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

स्वतंत्रता के समय भारत में 565 रियासतें थीं, जिनका आकार, शक्ति और महत्वाकांक्षा भिन्न-भिन्न था। इन रियासतों का भारतीय संघ में बिना व्यापक हिंसा के एकीकरण न केवल एक प्रशासनिक सफलता थी, बल्कि यह एक राजनीतिक चमत्कार था, जिसे दूरदर्शी नेतृत्व, व्यवहारिक कूटनीति और राष्ट्रीय एकता के प्रति आदर्शवादी प्रतिबद्धता के माध्यम से संभव बनाया गया।

रियासतों का एकीकरण एक राजनीतिक चमत्कार क्यों था

1. **चुनौती की जटिलता**

565 रियासतों का अस्तित्व, जिनके शासक, वैधानिक संधियाँ और प्रशासनिक तंत्र अलग-अलग थे, एक बहुत बड़ी चुनौती थी। इन विविध रियासतों का बिना व्यापक गृहयुद्ध या अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप के शांतिपूर्ण एकीकरण वास्तव में एक चमत्कार था।

2. **सरदार वल्लभभाई पटेल का नेतृत्व**

भारत के पहले गृहमंत्री के रूप में सरदार पटेल ने अडिग संकल्प के साथ इस कार्य का नेतृत्व किया, जिससे उन्हें "भारत का लौह पुरुष" कहा गया। उनकी प्रशासनिक सूझ-बूझ और राजनीतिक कुशलता ने अधिकांश रियासतों का शांतिपूर्ण विलय सुनिश्चित किया और असाधारण नेतृत्व को प्रदर्शित किया।

3. **वी. पी. मेनन की भूमिका और कूटनीतिक रणनीति**

पटेल के सहयोगी वी. पी. मेनन ने रियासतों को 'विलय पत्र' (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर करने के लिए मनाने हेतु गुप्त कूटनीतिक रणनीतियाँ अपनाईं। उनका पर्दे के पीछे का कार्यपटेल के नेतृत्व के पूरक रूप में कार्य कर, न्यूनतम रक्तपात के साथ रियासतों का विलय सुनिश्चित किया।

4. **जटिल मामलों का सफल समाधान**

जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर जैसी रियासतें गंभीर चुनौती थीं। हैदराबाद में "ऑपरेशन पोलो" के माध्यम से पुलिस कार्रवाई और जूनागढ़ में कुशल कूटनीति का उपयोग कर इन जटिल मामलों का समाधान करना वास्तव में चमत्कारी सफलता थी।

5. **राष्ट्रीय एकता की रक्षा**

रियासतों के एकीकरण ने भारत के विखंडन को रोका और देश की क्षेत्रीय अखंडता को सुरक्षित किया। इससे भविष्य की पृथकतावादी प्रवृत्तियों की संभावना कम हुई और भारत को एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य में बदलने की नींव मिली।

6. **अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तनाव से बचाव**

स्वतंत्रता के बाद ब्रिटिश हस्तक्षेप न होने के बावजूद, समय पर कार्रवाई के कारण इस मुद्दे का अंतर्राष्ट्रीयकरण नहीं हुआ। कश्मीर को छोड़कर अधिकांश रियासतों का शांतिपूर्ण विलय हुआ, जिससे बाहरी हस्तक्षेप न्यूनतम रहा।

7. **वैश्विक उदाहरण की स्थापना**

भारत का शांतिपूर्ण एकीकरण अन्य नवस्वतंत्र देशों के लिए एक उदाहरण बन गया, जिनमें से कई विखंडन का शिकार हुए। इससे भारत की राजनीतिक परिपक्वता का परिचय मिला और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसा प्राप्त हुई।

रियासतों के एकीकरण के पीछे व्यवहारिक आदर्शवाद (Pragmatic Idealism)

1. **गांधीवादी राष्ट्रीय एकता का आदर्श**

पटेल और नेहरू गांधीजी के राष्ट्रीय एकता और भाईचारे के आदर्शों से प्रेरित थे। उन्होंने नैतिक आग्रह को राजनीतिक यथार्थवाद के साथ संतुलित किया और जहाँ संभव हो वहाँ बल प्रयोग से बचते हुए रियासतों को भारत का हिस्सा बनाया।

2. **'विलय पत्र' का उपयोग**

विलय पत्र इस प्रकार बनाया गया था कि वह रियासतों की संप्रभुता का सम्मान करता था और साथ ही राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करता था। यह विधिक तंत्र व्यवहारिकता का उदाहरण था, जिसने रियासतों को स्वेच्छा से भारत में शामिल होने का विकल्प दिया।

3. **"गाजर और डंडा" नीति**

पटेल ने रियासतों को रियायतें (जैसे निजी पेंशन, उपाधियाँ) देने के साथ-साथ सैन्य कार्रवाई की चेतावनी भी दी। यह संतुलित रणनीति व्यवहारिक आदर्शवाद को दर्शाती थी, जहाँ आवश्यकता पड़ने पर कूटनीति और कठोर राज्य शक्ति दोनों का प्रयोग किया गया।

4. **सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता का सम्मान**

रियासतों के एकीकरण के समय सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने का प्रयास किया गया और बलपूर्वक एकरूपता थोपने से बचा गया। यह आदर्शवादी दृष्टिकोण संघवाद को प्रोत्साहित करता था और भारत की बहुलतावादी प्रकृति को मान्यता देता था।

5. **एकीकरण के लिए संस्थागत तंत्र**

"राज्यों मंत्रालय" और "राज्य पुनर्गठन आयोग" जैसी संस्थाओं की स्थापना प्रशासनिक और विधिक समायोजन के लिए की गई। यह दर्शाता है कि भारत ने केंद्रीयकरण के बजाय व्यवस्थित एकीकरण को प्राथमिकता दी।

6. **कश्मीर में परामर्श द्वारा विशेष दर्जा**

जम्मू-कश्मीर के लिए अनुच्छेद 370 की व्यवस्था ने व्यवहारिक आदर्शवाद का प्रदर्शन किया, जिससे राष्ट्रीय एकता को क्षेत्रीय संवेदनशीलता के साथ संतुलित किया गया, यद्यपि यह बाद में विवादास्पद रहा।

7. **रियासती विशेषाधिकारों की क्रमिक समाप्ति**

शुरुआत में राजाओं के विशेषाधिकारों को बनाए रखा गया, परंतु बाद में निजी पेंशन और छोटी रियासतों का विलीनीकरण कर एक लोकतांत्रिक भारत की ओर बढ़ते हुए इन्हें समाप्त किया गया। यह व्यवहारिक शासन व्यवस्था का परिचायक था।

भारतीय राष्ट्रीयता पर रियासतों के एकीकरण के प्रभाव

1. **क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा**

एकीकरण ने भारत के विभाजन को रोका और आधुनिक भारत की क्षेत्रीय नींव रखी। इससे भारत एक समग्र इकाई के रूप में उभरा, जो संप्रभुता का दावा कर सकता था और अपने विशाल भूभाग में कानून-व्यवस्था बनाए रख सकता था।

2. **भारतीय संघवाद की मजबूती**

एकीकरण ने भारत के संघीय ढाँचे को सुदृढ़ किया, जिसमें क्षेत्रीय विविधता को एक समान संवैधानिक ढाँचे में समायोजित किया गया। इससे सहयोगात्मक संघवाद को बल मिला, जो केंद्र और राज्य के बीच संतुलन बनाए रखता है।

3. **राजनीतिक स्थिरता और शासन व्यवस्था**

प्रशासन ने एक समान कानून, नीति और शासन व्यवस्था को संभव बनाया, जिससे विधिक और प्रशासनिक खंडन कम हुआ। यह राजनीतिक स्थिरता की नींव बना, जो राष्ट्र-निर्माण और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक थी।

4. **राष्ट्रीय सुरक्षा को बढ़ावा**

संभावित वैकल्पिक संप्रभुताओं को समाप्त कर, एकीकरण ने भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत किया। एकीकृत सैन्य और पुलिस संरचनाओं ने सीमाओं की रक्षा और आंतरिक सुरक्षा को अधिक प्रभावी बनाया।

5. **लोकतांत्रिक शासन का प्रचार**

एकीकरण ने रियासतों में लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना की, जिससे राजशाही तंत्र समाप्त हुआ। इससे पूरे भारत में नागरिकों को समान लोकतांत्रिक अधिकार मिले और वे एक साझा संविधान के तहत भागीदारी कर सके।

6. **सहयोगात्मक राष्ट्र निर्माण की परंपरा**

सफल एकीकरण ने जटिल राष्ट्रीय मुद्दों में सहयोग से समाधान निकालने की परंपरा स्थापित की। इससे यह प्रमाणित हुआ कि भारत विविधता और संघर्ष का समाधान संवाद, व्यवहारिकता और राष्ट्रीय प्रतिबद्धता से कर सकता है।

रियासतों का एकीकरण केवल एक राजनीतिक उपलब्धि नहीं था, बल्कि यह एक राष्ट्र-निर्माण की ऐतिहासिक उपलब्धि थी, जिसे व्यवहारिक आदर्शवाद और दूरदर्शी नेतृत्व के माध्यम से संभव बनाया गया। इसने सहयोगात्मक संघवाद को सशक्त किया, क्षेत्रीय पहचानों का सम्मान किया और समावेशी शासन सुनिश्चित किया, जिससे भारत की **एकता में अनेकता** की भावना को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा गया।

16. भारत में प्रभावी शहरी नियोजन और शासन के अभाव ने अव्यवस्थित शहरी विस्तार को कैसे बढ़ावा दिया है, इसकी आलोचनात्मक विवेचना कीजिए। साथ ही शहरी क्षेत्रों में जीवन गुणवत्ता सुधारने के उपाय भी सुझाइए।

भारत में शहरी विस्तार का स्वरूप अनियंत्रित फैलाव, अवसंरचनात्मक कमियाँ और पारिस्थितिकीय क्षरण से चिह्नित रहा है। जनसंख्या दबावों की पूर्वानुमानित योजना, भूमि उपयोग प्रबंधन और सेवाओं की आपूर्ति में शहरी नियोजन एवं शासन की विफलता ने शहरी संकटों को और अधिक जटिल बना दिया है।

अप्रभावी शहरी नियोजन और शासन का अनियोजित शहरी फैलाव पर प्रभाव

1. **मास्टर प्लानों का कमज़ोर क्रियान्वयन**

भारत के अधिकांश शहर पुराने और कमज़ोर रूप से लागू मास्टर प्लानों पर कार्य करते हैं, जिससे शहरी विस्तार अव्यवस्थित और अनियंत्रित हो जाता है। दिल्ली और बेंगलुरु जैसे शहरों में अवैध कॉलोनियाँ तेजी से उभर रही हैं, जो बुनियादी ढांचे पर अत्यधिक दबाव डालती हैं और कानूनी विवादों को जन्म देती हैं, यह योजनागत शहरी विकास को नियंत्रित करने में गंभीर शासन विफलता को दर्शाता है।

2. **झुग्गियों और अनौपचारिक बस्तियों की वृद्धि**

सस्ती आवास नीति की कमी के कारण लाखों लोग झुग्गियों और अनौपचारिक कॉलोनियों में रहने को विवश हैं। मुंबई की धारावी जैसी जगहों में लोग बिना उचित स्वच्छता, जल और स्वास्थ्य सेवाओं के रहते हैं, जिससे शहरीकरण विकास का अवसर न होकर जीवित रहने का संकट बन जाता है, और गरीबी तथा असुरक्षा गहरी होती है।

3. **शहरी स्थानीय निकायों (ULBs) की सीमित क्षमता**

ULBs वित्तीय कमज़ोरी, कर्मचारियों की कमी और तकनीकी दक्षता के अभाव से जूझते हैं। इससे भवन कोड लागू करने, भूमि उपयोग प्रबंधन और सेवाओं की आपूर्ति करने की उनकी क्षमता बाधित होती है, जिससे नए शहरी क्षेत्रों का नियमन असंतुलित हो जाता है और वे शासन प्रणाली से कट जाते हैं।

4. **सार्वजनिक परिवहन और गतिशीलता योजना की उपेक्षा**

एकीकृत सार्वजनिक परिवहन की कमी ने शहरी फैलाव को और खराब किया है। गुड़गांव जैसे क्षेत्रों के बाहरी हिस्सों में मेट्रो या बस कनेक्टिविटी नहीं होने के कारण लोग निजी वाहनों पर निर्भर हो जाते हैं, जिससे यातायात जाम, वायु प्रदूषण और यात्रा समय में वृद्धि होती है, जो सतत शहरी जीवन को नुकसान पहुँचाती है।

5. **पारिस्थितिकीय स्थलों पर अतिक्रमण**

आर्द्रभूमियों, वनों और तटीय क्षेत्रों में तेजी से विस्तार ने पर्यावरणीय क्षरण को बढ़ा दिया है। चेन्नई में 2015 की बाढ़ जैसी घटनाएँ प्राकृतिक जल निकासी तंत्रों पर निर्माण की परिणति हैं, जिससे शहर आपदाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं और पारिस्थितिकीय अवरोध नष्ट हो जाते हैं।

6. **बिखरी हुई शासन प्रणाली और प्राधिकरणों के बीच टकराव**

शहरों में भूमि, परिवहन और सेवाओं को प्रबंधित करने वाली कई एजेंसियाँ होती हैं जिनके बीच समन्वय की कमी होती है। मुंबई जैसे शहरों में इससे नीति टकराव और नौकरशाही में देरी होती है, जिससे अवैध निर्माण और अनियंत्रित फैलाव को फलने-फूलने का अवसर मिलता है।

7. **नई बस्तियों में सेवा वितरण की कमी**

नए विस्तार वाले क्षेत्रों में प्रायः जल आपूर्ति, सीवेज नेटवर्क और कचरा प्रबंधन प्रणाली नहीं होती। इस ढाँचागत पिछड़ेपन के कारण निवासी निजी सेवाओं पर निर्भर हो जाते हैं, जिससे लागत बढ़ती है और जीवन की गुणवत्ता घटती है, यह शासन की सेवा जरूरतों के पूर्वानुमान में असफलता को दर्शाता है।

योजनाबद्ध विस्तार भी शासन विफलताओं से ग्रस्त

1. **मिश्रित भूमि उपयोग के बिना ज़ोनिंग**

गुड़गांव की डीएलएफ कॉलोनियों जैसे योजनाबद्ध विस्तारों में केवल आवासीय या वाणिज्यिक क्षेत्र हैं, जिनमें सार्वजनिक सुविधाओं, हरित क्षेत्र और सस्ते आवासों का अभाव है। इससे सामाजिक और आर्थिक असमानता वाली बस्तियाँ बनती हैं, जो समावेशी शहरी जीवन की अवधारणा से दूर हैं।

2. **नागरिक सेवाओं के बिना डेवलपर-प्रेरित शहरी विकास**

ग्रेटर नोएडा में रियल एस्टेट-आधारित विस्तार में उच्च-इमारतें बन गईं, लेकिन सार्वजनिक परिवहन, जल और स्वास्थ्य ढाँचा उपलब्ध नहीं था। इससे निवासी सेवाओं की कमी से जूझते हैं और योजनाबद्ध क्षेत्र "शहरी मरुस्थल" बन जाते हैं, जो बाज़ार-आधारित विकास की सार्वजनिक भलाई की उपेक्षा को दर्शाता है।

3. **संसाधनों का असमान वितरण**

स्मार्ट सिटी और विशिष्ट टाउनशिप में उच्च-स्तरीय अवसंरचना को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि हाशिए के समुदाय उपेक्षित रहते हैं। इस दो-गति वाले विकास से सामाजिक बहिष्करण बढ़ता है और झुग्गियाँ तथा शहरी गाँव बुनियादी सेवाओं से वंचित रह जाते हैं, भले ही वे योजनाबद्ध क्षेत्रों के समीप हों।

4. **कृषि भूमि का बिना आजीविका समर्थन के रूपांतरण**

योजनाबद्ध शहरीकरण अक्सर किसानों को विस्थापित कर देता है, बिना पर्याप्त पुनर्वास के। हैदराबाद जैसे शहरों में कृषि भूमि को आईटी पार्क और आवासीय परियोजनाओं में बदलने से आजीविका का नुकसान हुआ है, जिससे प्रवासी मज़दूर अनौपचारिक बस्तियों में बसने को विवश हो गए हैं।

5. **जनसंख्या के साथ अवसंरचना का तालमेल नहीं**

योजनाबद्ध टाउनशिप की आबादी कई बार वहाँ की सेवा अवसंरचना से अधिक हो जाती है। नवी मुंबई जैसे उपग्रह शहर में जल संकट, यातायात अड़चन और परिवहन की कमी देखने को मिली, जिससे स्पष्ट होता है कि दीर्घकालिक क्षमता के बिना की गई योजना अस्थायी और अस्थिर होती है।

6. **स्थानीय समुदायों की योजना निर्माण में उपेक्षा**

योजना निर्माण प्रक्रियाओं में अक्सर स्थानीय समुदायों को शामिल नहीं किया जाता, जिससे फ्लाईओवर, एक्सप्रेसवे या विशेष आर्थिक क्षेत्र जैसे ढाँचे निवासियों को विस्थापित कर देते हैं या उनके इलाकों को विभाजित कर देते हैं। यह ऊपर से नीचे की नीति सार्वजनिक विरोध और समुदायिक अलगाव को जन्म देती है।

7. **जलवायु और पर्यावरणीय चिंताओं की उपेक्षा**

लवासा सिटी जैसी योजनाबद्ध परियोजनाएँ पर्यावरणीय अनुमतियों की अनदेखी कर पारिस्थितिकीय क्षति का कारण बनी हैं। योजनाबद्ध विस्तारों में पर्यावरणीय अनुपालन की कमी सततता को कमज़ोर करती है और यह दिखाती है कि पर्यावरणीय दृष्टिकोण के बिना की गई योजना प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

भारत में शहरी जीवन की गुणवत्ता सुधारने की रणनीतियाँ

1. **शहरी स्थानीय निकायों (ULBs) की स्वायत्तता को सशक्त बनाना**

74वें संविधान संशोधन के अनुसार, ULBs को पर्याप्त वित्तीय संसाधन, दक्ष जनशक्ति और विकेन्द्रित शक्तियों से सशक्त बनाना चाहिए। बेहतर नगरपालिका क्षमता शहरी योजना, सेवा वितरण और नागरिक भागीदारी को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए आवश्यक है।

2. **एकीकृत शहरी नियोजन मॉडल को अपनाना**

शहरों को अद्यतन मास्टर प्लान की आवश्यकता है, जिसमें मिश्रित भूमि उपयोग, परिवहन एकीकरण और जलवायु-लचीलापन सम्मिलित हो। अहमदाबाद का BRTS और भूमि समेकन नीति जैसे मॉडल सतत शहरी विकास के लिए अनुकरणीय हैं।

3. **सस्ते और किराए के आवास का विस्तार**

प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) और किराए की आवास नीतियों को मजबूत करना आवास की कमी को दूर कर सकता है। सार्वजनिक-निजी भागीदारी और सामुदायिक भागीदारी, सस्ते, रहने योग्य और समावेशी आवास पारिस्थितिकी तंत्र बनाने में आवश्यक हैं।

4. **सार्वजनिक परिवहन प्रणालियों में निवेश**

मेट्रो, BRTS और इलेक्ट्रिक बस नेटवर्क का विस्तार, साथ में अंतिम-मील कनेक्टिविटी से, यातायात जाम और प्रदूषण को कम किया जा सकता है। अहमदाबाद का BRTS और दिल्ली मेट्रो इस दिशा में सफल उदाहरण हैं।

5. **शहरी हरित और जल अवसंरचना की रक्षा**

शहरी योजना में झील पुनर्जीवन, आर्द्रभूमि संरक्षण और शहरी वनीकरण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बेंगलुरु की झील पुनरुद्धार परियोजनाएँ यह दर्शाती हैं कि पारिस्थितिकी-संवेदनशील योजना बाढ़ को कम कर सकती है, जैव विविधता बढ़ा सकती है और शहरी जीवन की गुणवत्ता सुधार सकती है।

6. **नागरिक भागीदारी और उत्तरदायित्व को बढ़ावा देना**

वार्ड समितियों और नागरिक चार्टर की स्थापना से योजना और शासन में सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है। नागरिकों को सशक्त बनाना पारदर्शिता और सेवा वितरण को बेहतर बनाता है, जिससे समावेशी शहरी विकास संभव होता है।

7. **डिजिटल शासन उपकरणों का उपयोग**

कचरा प्रबंधन, यातायात नियंत्रण और सार्वजनिक शिकायत निवारण के लिए स्मार्ट सिटी तकनीकों को अपनाना दक्षता को बढ़ाता है। स्वच्छ भारत मिशन का रैंकिंग डैशबोर्ड जैसे प्लेटफार्मों ने शहरी शासन में पारदर्शिता और नागरिक भागीदारी को बढ़ावा दिया है।

भारत की शहरी चुनौतियाँ अनियंत्रित विस्तार और दोषपूर्ण योजनाबद्ध विस्तार दोनों से उत्पन्न होती हैं। सतत शहरीकरण के लिए सशक्त शासन, एकीकृत योजना और नागरिक-केंद्रित नीतियाँ आवश्यक हैं। स्थानीय संस्थाओं को मजबूत करके, समावेशी अवसंरचना को बढ़ावा देकर और पर्यावरणीय सततता सुनिश्चित करके भारत अपने शहरों को **समानता और लचीलापन आधारित विकास के इंजन** में बदल सकता है।

17. "सामाजिक आंदोलनों ने भारतीय समाज में परिवर्तन के कारक के रूप में कार्य किया है।" पर्यावरण, महिला और दलित आंदोलनों के उदाहरणों के साथ विवेचना कीजिए।

सामाजिक आंदोलन संगठित समूहों द्वारा मौजूदा सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक परिस्थितियों को चुनौती देने के सामूहिक प्रयास होते हैं। भारत में पर्यावरण, महिला अधिकार और दलित सशक्तिकरण से जुड़े आंदोलनों ने सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में कार्य किया है, जिससे सार्वजनिक नीतियों, सामाजिक चेतना और संस्थागत ढाँचों में न्याय, समानता और सततता को बढ़ावा देने हेतु व्यापक बदलाव आए हैं।

पर्यावरणीय आंदोलन : पारिस्थितिकीय चेतना और नीति परिवर्तन के उत्प्रेरक

1. **चिपको आंदोलन (1973)**

   उत्तराखंड में प्रारंभ हुआ यह आंदोलन तब हुआ जब ग्रामीणों, विशेषकर महिलाओं ने वनों की व्यावसायिक कटाई के विरोध में वृक्षों से लिपट कर विरोध दर्ज किया। यह अहिंसात्मक आंदोलन पर्यावरणीय चेतना को जगाने वाला बना और इसके परिणामस्वरूप वन संरक्षण अधिनियम (1980) अस्तित्व में आया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि जमीनी स्तर का पर्यावरणीय सक्रियता कितना प्रभावशाली हो सकता है।

2. **नर्मदा बचाओ आंदोलन**

   यह आंदोलन नर्मदा नदी पर बने बड़े बाँधों का विरोध करते हुए विस्थापन, पर्यावरणीय क्षरण और आदिवासी अधिकारों जैसे मुद्दों को राष्ट्रीय मंच पर लेकर आया। इसने सतत विकास की बहस को लोकप्रिय बनाया और पुनर्वास नीतियों तथा बाँध सुरक्षा दिशा-निर्देशों को प्रभावित किया।

3. **साइलेंट वैली आंदोलन (1978)**

   केरल की साइलेंट वैली में एक जलविद्युत परियोजना का विरोध करते हुए कार्यकर्ताओं ने इसे राष्ट्रीय उद्यान घोषित कराने में सफलता प्राप्त की। यह आंदोलन जैव विविधता के संरक्षण में सामाजिक आंदोलनों की भूमिका को दर्शाता है।

4. **अप्पिको आंदोलन (1983)**

   चिपको से प्रेरित यह कर्नाटक-आधारित आंदोलन वनों की अंधाधुंध कटाई के खिलाफ था। इसने सतत वन प्रबंधन और सामुदायिक अधिकारों को लेकर जागरूकता बढ़ाई और स्थानीय वन प्रशासन में बदलाव लाया।

5. **केरल और ओडिशा के तटीय आंदोलन**

   मत्स्यजीवी समुदायों द्वारा तटीय परियोजनाओं के खिलाफ शुरू किए गए इन आंदोलनों ने समुद्री संरक्षण और आजीविका की सुरक्षा की माँग की। इन आंदोलनों ने पारिस्थितिकीय न्याय की अवधारणा को सामने लाया और तटीय क्षेत्र विनियमन को प्रभावित किया।

6. **परमाणु विरोधी आंदोलन**

   कुडनकुलम आंदोलन जैसे विरोधों ने परमाणु ऊर्जा की सुरक्षा पर सवाल उठाए, नवीकरणीय ऊर्जा की वकालत की और ऊर्जा नीति-निर्माण में सार्वजनिक भागीदारी की माँग की।

महिला आंदोलन : लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय के प्रेरक

1. **दहेज विरोधी आंदोलन (1970 के दशक)**

   इस आंदोलन ने दहेज से जुड़ी हिंसा के खिलाफ स्वर उठाया। इसके परिणामस्वरूप दहेज निषेध अधिनियम (1961) और भारतीय दंड संहिता की धारा 498A जैसे विधिक सुधार हुए, जो महिलाओं की कानूनी सुरक्षा में मील का पत्थर बने।

2. **स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी**

   सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट और अरुणा आसफ़ अली जैसे नेताओं के नेतृत्व में महिलाओं की सार्वजनिक भूमिका बढ़ी, जिससे स्वतंत्रता के बाद सार्वभौमिक मताधिकार और लैंगिक समानता के संवैधानिक ढाँचे को बल मिला।

3. **स्वरोज़गार महिला संघ (SEWA)**

   1972 में स्थापित, SEWA ने असंगठित क्षेत्र की महिलाओं को संगठित किया और उन्हें आजीविका अधिकार, सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण प्रदान किया। इससे श्रम कल्याण नीतियों पर भी प्रभाव पड़ा।

4. **शाह बानो मामला और मुस्लिम महिलाओं का अधिकार आंदोलन**

शाह बानो केस (1985) और उसके बाद की बहसों ने मुस्लिम महिलाओं को संगठित किया और 1986 में मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम को प्रेरित किया। यह आंदोलन लैंगिक और धार्मिक पहचान के अंतःसंबंध को उजागर करता है।

5. **मीटू और कार्यस्थल यौन उत्पीड़न विरोधी आंदोलन**

#MeToo आंदोलन ने यौन उत्पीड़न को सार्वजनिक विमर्श में लाया और कार्यस्थल सुरक्षा अधिनियम (POSH Act, 2013) को सुदृढ़ किया, जिससे जवाबदेही और लैंगिक न्याय को बल मिला।

6. **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ आंदोलन**

हालाँकि यह एक सरकारी अभियान है, लेकिन इसमें नागरिक समाज और जमीनी स्तर की सक्रियता ने योगदान दिया। इसने कन्या भ्रूण हत्या, बालिका शिक्षा और लैंगिक समानता को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाया।

7. **पर्यावरणीय आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी**

चिपको और नर्मदा बचाओ जैसे आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका ने उन्हें पर्यावरण नेतृत्व, संसाधन शासन और सामुदायिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में अग्रणी बनाया।

दलित आंदोलन : सामाजिक न्याय और गरिमा के वाहक

1. **आंबेडकरवादी आंदोलन और जाति उन्मूलन**

डॉ. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में चला यह आंदोलन जातिगत भेदभाव को चुनौती देता है। इसने सामाजिक समानता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और आरक्षण जैसी संवैधानिक गारंटी की माँग की और भारत के सामाजिक न्याय ढाँचे को आकार दिया।

2. **दलित पैंथर आंदोलन (1972)**

ब्लैक पैंथर आंदोलन से प्रेरित यह आंदोलन दलित युवाओं को जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध संगठित करता है। इसने साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को जगाया और जाति अत्याचारों के लिए राज्य की जवाबदेही की माँग की।

3. **बहुजन समाज पार्टी (BSP) और राजनीतिक दावे**

BSP के उदय ने दलित आंदोलन को राजनीतिक शक्ति में परिवर्तित किया, जिससे शासन, नीति-निर्माण और दलित पहचान को राजनीतिक बल मिला।

4. **हाथ से मैला उठाने के खिलाफ आंदोलन**

सफाई कर्मचारी आंदोलन जैसे संगठनों ने हाथ से मैला उठाने जैसी अमानवीय प्रथाओं को उजागर किया और 2013 के 'हाथ से मैला उठाने का निषेध एवं पुनर्वास अधिनियम' जैसे कानूनों को प्रभावित किया, जिससे श्रम की गरिमा को स्थापित किया गया।

5. **भूमि और श्रम अधिकार आंदोलन**

तेलंगाना, बिहार और महाराष्ट्र में दलित आंदोलनों ने भूमि वितरण, उचित मजदूरी और ज़मीन के अधिकारों की माँग की, जिससे कृषि न्याय और सामाजिक समावेशन को बल मिला।

6. **दलित महिलाओं का सशक्तिकरण आंदोलन**

दलित महिलाओं के संगठनों ने जाति और लिंग की दोहरी भेदभाव की चुनौती को सामने लाया। ऑल इंडिया दलित महिला अधिकार मंच जैसे आंदोलनों ने दलित महिला अधिकारों को मुख्यधारा की नीति-बहस का हिस्सा बनाया।

पर्यावरण संरक्षण, महिला अधिकार और दलित सशक्तिकरण से जुड़े सामाजिक आंदोलनों ने सार्वजनिक नीतियों को पुनर्परिभाषित किया, सामाजिक पदानुक्रम को चुनौती दी और लोकतंत्र को सुदृढ़ किया। आगे का रास्ता इन उपलब्धियों को संस्थागत स्वरूप में बदलने, समावेशी शासन को बढ़ावा देने और सहभागी लोकतंत्र को सशक्त करने में निहित है, ताकि सामाजिक आंदोलन भारत में प्रगतिशील परिवर्तन के इंजन बने रहें।

18. भारतीय समाज के वंचित वर्गों के लिए वैश्वीकरण से उत्पन्न चुनौतियों और अवसरों की विवेचना कीजिए।

वैश्वीकरण का तात्पर्य विश्व स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं, संस्कृतियों और समाजों के बीच बढ़ती पारस्परिक जुड़ाव से है। यद्यपि इसने आर्थिक वृद्धि और प्रौद्योगिकीय पहुंच को बढ़ावा दिया है, लेकिन इसके प्रभाव हाशिए पर पड़े वर्गों के लिए अस्पष्ट रहे हैं, जो सामाजिक न्याय और समावेशन के संदर्भ में अवसरों और चुनौतियों दोनों को प्रस्तुत करते हैं।

वैश्वीकरण से प्रभावित भारतीय समाज के हाशिए पर पड़े वर्ग

1. **अनुसूचित जातियाँ (SCs)**

   ऐतिहासिक रूप से जातिगत भेदभाव का शिकार रही SCs को शिक्षा, रोज़गार और सामाजिक गतिशीलता तक सीमित पहुंच प्राप्त है। वैश्वीकरण से शहरी नौकरी बाज़ार और निजी क्षेत्र के विस्तार पर प्रभाव पड़ा है, जो कौशल और सामाजिक पूँजी पर निर्भर करते हुए इन वर्गों के समावेशन या बहिष्करण को प्रभावित करता है।

2. **अनुसूचित जनजातियाँ (STs)**

   वन और खनिज संपन्न क्षेत्रों में रहने वाली STs जनसंख्या को खनन, उद्योग और बड़े बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं में वैश्विक निवेश के कारण विस्थापन का सामना करना पड़ता है। जहाँ वैश्वीकरण विकास के अवसर लाता है, वहीं यह पारंपरिक आजीविका और सांस्कृतिक धरोहर के लिए खतरा बन जाता है।

3. **महिलाएँ, विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र में**

   असंगठित और अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्यरत महिलाएँ वैश्विक बाज़ार की प्रतिस्पर्धा और कम कौशल स्तर के कारण नौकरी की असुरक्षा का सामना करती हैं। हालाँकि, वैश्वीकरण ने सेवा, BPO और विनिर्माण क्षेत्रों में रोज़गार के नए अवसर भी प्रदान किए हैं, जिससे लैंगिक भूमिकाओं में परिवर्तन आया है।

4. **ग्रामीण गरीब और छोटे किसान**

   गुज़ारे भर की खेती पर निर्भर ग्रामीण समुदाय वैश्विक मूल्य अस्थिरता और बाज़ार जोखिमों के कारण संकट में हैं। बाजार तक पहुंच, ऋण और तकनीक की कमी छोटे किसानों को हाशिए पर ढकेलती है, यद्यपि वैश्विक मूल्य श्रृंखलाएँ कृषि निर्यात के लिए नए अवसर भी प्रदान करती हैं।

5. **शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाले गरीब**

   शहरी गरीब, जो झुग्गियों और अनौपचारिक बस्तियों में रहते हैं, वैश्वीकरण-प्रेरित निजीकरण और गेंट्रीफिकेशन के कारण जीवन-यापन की बढ़ती लागत, आवास की कमी और रोज़गार की अनिश्चितता से जूझते हैं। इनका समावेशन प्रभावी शहरी योजना सुधारों पर निर्भर करता है।

6. **दिव्यांग और LGBTQ+ समुदाय**

   ऐतिहासिक रूप से बहिष्कृत दिव्यांग व्यक्तियों और LGBTQ+ समुदाय को वैश्विक मानवाधिकार ढाँचों के माध्यम से धीरे-धीरे दृश्यता मिल रही है, हालाँकि घरेलू सामाजिक कलंक और नीति की खामियाँ अब भी इनकी पूर्ण समावेशन को बाधित करती हैं।

भारत के हाशिए पर पड़े वर्गों के लिए वैश्वीकरण की चुनौतियाँ

1. **नौकरियों का विस्थापन और अनौपचारिकता**

   वैश्वीकरण ने संविदात्मक और अनौपचारिक रोज़गार को बढ़ाया है, जिससे कम कुशल श्रमिकों—विशेष रूप से महिलाएँ, अनुसूचित जाति और जनजाति वर्ग—की नौकरी की सुरक्षा प्रभावित होती है। वैश्विक बाजार की माँग पारंपरिक आजीविकाओं को समाप्त करती है और इन वर्गों को आर्थिक अनिश्चितता में धकेलती है।

2. **भूमि विस्थापन और अधिग्रहण**

   खनन, उद्योग और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं के लिए विदेशी निवेश से जनजातीय समुदायों का बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ है, जिससे भूमि अधिकार, सांस्कृतिक पहचान और आजीविका की सुरक्षा खतरे में पड़ी है। छत्तीसगढ़ और ओडिशा जैसे क्षेत्रों में यह विशेष रूप से स्पष्ट है।

3. **डिजिटल विभाजन और बहिष्करण**

ग्रामीण और वंचित समुदायों में डिजिटल तकनीक की पहुँच सीमित है, जिससे डिजिटल विभाजन बढ़ता जा रहा है। डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण ये समूह ई-कॉमर्स, ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल शासन जैसे नई अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों से बाहर रह जाते हैं।

4. **सांस्कृतिक समरूपीकरण और पहचान का ह्रास**

वैश्विक मीडिया और बाज़ार की ताक़तें प्रमुख सांस्कृतिक रुझानों को बढ़ावा देती हैं, जिससे स्थानीय भाषाओं, कलाओं और परंपरागत विरासतों को खतरा होता है। वंचित समुदायों को अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक एकता खोने का खतरा रहता है।

5. **शहरी विषमताओं में वृद्धि**

वैश्वीकरण-प्रेरित शहरी विस्तार ने आवास की कमी, जल संकट और अवसंरचनात्मक तनाव को बढ़ाया है। शहरी गरीबों को जबरन बेदखली, गेंट्रीफिकेशन और बुनियादी सेवाओं से वंचना का सामना करना पड़ता है, जिससे स्थानिक विषमता और बढ़ जाती है।

6. **स्वास्थ्य और सामाजिक असुरक्षा**

वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में कम वेतन वाली नौकरियों (जैसे वस्त्र कारखाने या निर्माण कार्य) में लगे वंचित समूह स्वास्थ्य जोखिमों और सामाजिक सुरक्षा के अभाव से पीड़ित होते हैं, जिससे उनकी आजीविका और जीवन गुणवत्ता प्रभावित होती है।

7. **राजनीतिक बहिष्करण**

FDI, निजीकरण और वैश्विक प्रतिस्पर्धा पर केंद्रित नीति निर्माण सामाजिक कल्याण को पीछे छोड़ देती है। सीमित राजनीतिक प्रभाव वाले वंचित समूह बाज़ार-आधारित अर्थव्यवस्था में अपने अधिकारों और संरक्षण के लिए संघर्ष नहीं कर पाते।

भारत के वंचित समुदायों के लिए वैश्वीकरण द्वारा प्रदत्त अवसर

1. **नए क्षेत्रों में रोज़गार के अवसरों का विस्तार**

BPO, रिटेल, पर्यटन और विनिर्माण क्षेत्रों में वैश्वीकरण ने नए रोज़गार सृजित किए हैं। महिलाएँ और SC/ST युवा इन क्षेत्रों में प्रवेश कर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर रहे हैं, विशेष रूप से हैदराबाद, पुणे और बेंगलुरु जैसे शहरों में।

2. **स्थानीय उत्पादों के लिए वैश्विक बाज़ार तक पहुँच**

हस्तशिल्प, कृषि उत्पाद और पारंपरिक खाद्य सामग्री से जुड़े वंचित समुदायों को फेयर ट्रेड नेटवर्क और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म के माध्यम से वैश्विक माँग से लाभ मिल रहा है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक संरक्षण को बल मिलता है।

3. **महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण**

महिलाओं को वस्त्र, इलेक्ट्रॉनिक्स और कृषि-आधारित उद्योगों में रोज़गार मिला है, जिससे उनकी आय और सौदेबाज़ी की शक्ति में वृद्धि हुई है। माइक्रोफाइनेंस और स्वयं सहायता समूह (SHG) आंदोलनों ने ग्रामीण महिलाओं को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं से जोड़ा है।

4. **सामाजिक गतिशीलता के लिए डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म**

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म दलित उद्यमियों, जनजातीय कलाकारों और ग्रामीण महिलाओं को दृश्यता और बाज़ार तक पहुँच प्रदान करते हैं। सोशल मीडिया अभियानों ने दलित अधिकारों, LGBTQ+ वकालत और लैंगिक न्याय आंदोलनों को बल दिया है, जिससे सामाजिक समावेशन को बढ़ावा मिला है।

5. **वैश्विक एकजुटता और मानवाधिकार ढाँचे**

वैश्विक नेटवर्क दलित अधिकारों, जनजातीय स्वायत्तता और लैंगिक समानता को अंतर्राष्ट्रीय वकालत के माध्यम से समर्थन देते हैं। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद जैसे मंच वंचित आवाज़ों को बल प्रदान करते हैं और सरकारों पर समावेशी नीतियों के लिए दबाव बनाते हैं।

6. **कौशल विकास और शिक्षा तक पहुँच**

वैश्वीकरण ने CSR पहलों और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ाया है। STEM शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और डिजिटल साक्षरता अभियानों ने वंचित युवाओं को वैश्विक नौकरी बाज़ार के लिए सशक्त किया है।

7. **सामाजिक उद्यमिता और NGO का उदय**

   वैश्वीकरण ने आजीविका सृजन, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा पर केंद्रित सामाजिक उद्यमों और NGO को प्रोत्साहित किया है। SEWA और बेरफुट कॉलेज जैसे सफल मॉडल समावेशी विकास की दिशा में उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

वैश्वीकरण भारत के वंचित समुदायों के लिए चुनौतियाँ और अवसर दोनों प्रस्तुत करता है। इसके संभावित लाभों को प्राप्त करने के लिए नीतियों को समावेशी वृद्धि, कौशल विकास, डिजिटल समावेशन और अधिकार-आधारित दृष्टिकोण पर केंद्रित करना चाहिए। शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और सहभागी शासन के माध्यम से वंचित वर्गों को सशक्त बनाकर, वैश्वीकरण को **समानता और सामाजिक न्याय** के साधन में बदला जा सकता है।

19. भारत में भूकंप-संवेदनशील क्षेत्रों के वर्गीकरण का आधार क्या है तथा सरकार द्वारा इसके प्रभाव को कम करने हेतु किए गए नीति उपायों की समालोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

भारत एक टेक्टोनिक रूप से सक्रिय क्षेत्र में स्थित है, जो इसे भूकंपों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाता है। देश को भू-आकृतिक और प्लेट विवर्तनिक कारकों के आधार पर पाँच भूकंपीय क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। यद्यपि राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना (NDMP) जैसी नीति रूपरेखाएँ मौजूद हैं, लेकिन क्रियान्वयन और तैयारी में चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जिससे समग्र जोखिम न्यूनीकरण उपायों की आवश्यकता महसूस होती है।

भारत में भूकंप संभावित क्षेत्रों के पीछे भू-आकृतिक (Geomorphological) कारक

भारतीय मानक ब्यूरो (BIS) ने भूकंपों की तीव्रता और आवृत्ति के आधार पर भारत को चार भूकंपीय क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है। यह वर्गीकरण भूकंपीय गतिविधियों के संभावित जोखिम वाले क्षेत्रों की पहचान करने में सहायक है।

1. **ज़ोन II (कम जोखिम वाला क्षेत्र)**

   इस क्षेत्र में भूकंपीय गतिविधि बहुत कम होती है और भूकंप की तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 4.9 से अधिक नहीं होती। इस क्षेत्र में शामिल हैं:

   - भारत के दक्षिणी भाग जैसे कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल।
   - मध्य भारत के कुछ हिस्से जैसे मध्य प्रदेश के भाग।

2. **ज़ोन III (मध्यम जोखिम वाला क्षेत्र)**

   इस क्षेत्र में मध्यम स्तर की भूकंपीय गतिविधि होती है, जिसमें भूकंप की तीव्रता 5 से 6 के बीच होती है। इसमें शामिल हैं:

   - पश्चिमी और मध्य भारत के भाग जैसे मुंबई, पुणे और आस-पास के क्षेत्र।
   - आंध्र प्रदेश और ओडिशा जैसे तटीय क्षेत्र।
   - इंडो-गैंगेटिक मैदान जैसे दिल्ली और बिहार के क्षेत्र।

3. **ज़ोन IV (उच्च जोखिम वाला क्षेत्र)**

   इस क्षेत्र में अक्सर मजबूत भूकंपीय गतिविधि होती है, जिसकी तीव्रता 6 से 6.9 तक होती है। इसमें शामिल हैं:

   - भारत का उत्तरी भाग विशेष रूप से हिमालयी पट्टी जैसे हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड।
   - राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली, जो उच्च भूकंपी जोखिम वाले क्षेत्र में स्थित है।
   - कश्मीर, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्से।

4. **ज़ोन V (बहुत उच्च जोखिम वाला क्षेत्र)**

   यह भारत का सबसे अधिक भूकंपीय रूप से सक्रिय क्षेत्र है, जिसमें भूकंप की तीव्रता 7 या उससे अधिक होती है। इसमें शामिल हैं:

   - सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत जैसे असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश।
   - जम्मू और कश्मीर के उत्तरी भाग।
   - गुजरात का पश्चिमी हिस्सा, विशेष रूप से कच्छ क्षेत्र (2001 में विनाशकारी भूकंप से प्रभावित)।
   - अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह के कुछ क्षेत्र।

भारत में भूकंप जोखिम न्यूनीकरण के लिए मौजूदा नीति उपाय

1. **राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005**

   NDMA अधिनियम आपदा जोखिम न्यूनीकरण के लिए कानूनी ढाँचा प्रदान करता है, जो राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) को भूकंप प्रभावित क्षेत्रों के लिए शमन, तैयारी और प्रतिक्रिया रणनीतियों का समन्वय करने का अधिकार देता है।

2. **राष्ट्रीय भवन संहिता (NBC) 2016**

   NBC उच्च जोखिम वाले भूकंपीय क्षेत्रों में भूकंप-रोधी भवन डिजाइनों को अनिवार्य बनाती है। यह सार्वजनिक अवसंरचना, आवासीय और व्यावसायिक भवनों की संरचनात्मक सुरक्षा के लिए दिशानिर्देश प्रदान करती है।

3. **भूकंपीय सूक्ष्मी क्षेत्रीकरण परियोजनाएँ (Seismic Microzonation)**

   सरकार ने दिल्ली, कोलकाता और गुवाहाटी जैसे प्रमुख शहरों का सूक्ष्म भूकंपी क्षेत्रीकरण शुरू किया है ताकि जिला और शहर स्तर पर संवेदनशील क्षेत्रों की मैपिंग हो सके, जिससे जोखिम-सूचित शहरी योजना संभव हो सके।

4. **भूकंप पूर्व चेतावनी प्रणाली (EEWS)**

   उत्तराखंड में पायलट परियोजनाओं के तहत सैटेलाइट संचार और भूकंपीय सेंसर का उपयोग कर पूर्व चेतावनी प्रणाली स्थापित की गई है। यद्यपि इसका विस्तार सीमित है, लेकिन इसका उद्देश्य जान-माल की हानि को कम करना है।

5. **प्रशिक्षण एवं क्षमता निर्माण कार्यक्रम**

   NDMA इंजीनियरों, वास्तुकारों और शहरी योजनाकारों के लिए मॉक ड्रिल, जन जागरूकता अभियान और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है ताकि भूकंप सुरक्षित निर्माण और आपातकालीन तैयारी को बढ़ावा दिया जा सके।

6. **राज्य और जिला आपदा प्रबंधन योजनाएँ (SDMPs/DDMPs)**

   उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और असम जैसे राज्यों ने राज्य स्तर पर भूकंप जोखिम न्यूनीकरण पर केंद्रित आपदा प्रबंधन योजनाएँ विकसित की हैं, जो विकेंद्रीकृत तैयारी और सामुदायिक लचीलापन सुनिश्चित करती हैं।

7. **स्कूल सुरक्षा और सामुदायिक तैयारी**

   सरकार स्कूल सुरक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा देती है, जिसमें छात्रों और शिक्षकों को निकासी अभ्यास और आपदा जोखिम जागरूकता के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, जिससे जमीनी स्तर पर तैयारी को बढ़ावा मिलता है।

भारत में भूकंप लचीलापन बढ़ाने के लिए और क्या किया जाना चाहिए

1. **भवन संहिता के अनुपालन को सुदृढ़ करना**

   भवन संहिता मौजूद है, लेकिन शहरी झुग्गियों और ग्रामीण क्षेत्रों में उनका अनुपालन कमज़ोर है। राज्य सरकारों को स्थानीय स्तर पर क्षमता निर्माण और निगरानी तंत्र के साथ सख्त अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए।

2. **पूर्व चेतावनी प्रणाली (EEWS) का विस्तार**

   सैटेलाइट और ज़मीनी सेंसरों का उपयोग कर EEWS को सभी उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों तक विस्तारित किया जाना चाहिए। वैश्विक भूकंपीय निगरानी नेटवर्क से सहयोग भारत की चेतावनी प्रणाली को सुदृढ़ कर सकता है।

3. **शहरी नियोजन में आपदा जोखिम न्यूनीकरण को मुख्यधारा में लाना**

   शहरी विकास नीतियों में भूकंपीय जोखिम आकलनों को शामिल किया जाना चाहिए, ताकि भूमि उपयोग नियोजन, ज़ोनिंग और अवसंरचना परियोजनाएँ सुरक्षित और लचीली बन सकें।

4. **महत्त्वपूर्ण अवसंरचना का पुनःसुदृढ़ीकरण**

   सरकार को भूकंपी क्षेत्रों में स्कूलों, अस्पतालों, पुलों और सार्वजनिक भवनों की पहचान कर उन्हें सुदृढ़ करना चाहिए। "जीवन रेखा भवनों का भूकंपरोधी सुदृढ़ीकरण" जैसे कार्यक्रमों का विस्तार और पर्याप्त वित्तपोषण आवश्यक है।

5. **सामुदायिक आधारित आपदा तैयारी को बढ़ावा देना**

   स्थानीय समुदायों को प्रशिक्षण, जागरूकता कार्यक्रम और स्वैच्छिक नेटवर्कों के माध्यम से सशक्त बनाकर जमीनी स्तर पर लचीलापन बनाया जा सकता है। यह दृष्टिकोण दूरस्थ और संवेदनशील क्षेत्रों में अंतिम-मील की तैयारी सुनिश्चित करता है।

6. **अनुसंधान और निगरानी को सशक्त बनाना**

   भूकंपविज्ञान अनुसंधान, वास्तविक समय डेटा संग्रह और उन्नत मॉडलिंग में निवेश कर जोखिम आकलन को बेहतर किया जा सकता है। वैज्ञानिक संस्थानों के साथ सहयोग से भू-आकृतिक अंतर्दृष्टियों पर आधारित स्थानीयकृत शमन रणनीतियाँ विकसित की जा सकती हैं।

7. **समावेशी और न्यायसंगत आपदा नीति**

   नीतियाँ हाशिए पर पड़े वर्गों जैसे शहरी गरीबों, महिलाओं और जनजातीय समुदायों की संवेदनशीलताओं को संबोधित करें। इन्हें जोखिम न्यूनीकरण संसाधनों, पुनर्वास सहायता और आजीविका पुनर्निर्माण तक समान पहुँच मिलनी चाहिए।

भारत की भूकंपीय संवेदनशीलता एक समग्र, बहुआयामी दृष्टिकोण की माँग करती है, जिसमें वैज्ञानिक समझ, शासन सुधार और सामुदायिक लचीलापन का संयोजन हो। जबकि नीति ढाँचे पहले से मौजूद हैं, उनके क्रियान्वयन में खामियाँ बनी हुई हैं। वर्तमान समय की आवश्यकता है कि **अनुपालन को सशक्त किया जाए, पूर्व चेतावनी तंत्र का विस्तार किया जाए, और आपदा लचीलापन को विकास योजना में मुख्यधारा बनाया जाए**, ताकि भारत को एक सुरक्षित और सतत भविष्य की ओर अग्रसर किया जा सके।

20. भारत में कपास वस्त्र उद्योग के औपनिवेशिक काल से वर्तमान तक के विकास को रेखांकित कीजिए, इसके स्थानिक वितरण में आए परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए तथा इस उद्योग के पुनरुद्धार हेतु सरकार द्वारा उठाए गए उपायों का उल्लेख कीजिए।

भारत का कपास वस्त्र उद्योग, देश के सबसे पुराने उद्योगों में से एक, उपनिवेशीकरण, स्वतंत्रता पश्चात पुनरुद्धार और वैश्वीकरण के दौरों से गुजरता रहा है। एक समय में यह उद्योग वैश्विक नेतृत्व करता था, परंतु औपनिवेशिक नीतियों ने इसके पतन को जन्म दिया। स्वतंत्रता के बाद के आधुनिकीकरण, नीति समर्थन और वैश्विक माँग ने इसके भूगोल को पुनः आकार दिया, जिससे नए अवसरों और चुनौतियों दोनों का सामना हुआ।

भारत में कपास वस्त्र उद्योग की ऐतिहासिक यात्रा

1. **उपनिवेश-पूर्व काल में भारत का वस्त्र प्रभुत्व**

   भारत का हथकरघा उद्योग वैश्विक स्तर पर प्रसिद्ध था, जिसमें मसलिन और छिंट जैसे उत्कृष्ट कपास वस्त्र यूरोप, अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया में निर्यात होते थे। मुर्शिदाबाद, ढाका और मछलीपट्टनम जैसे शहर समृद्ध वस्त्र केंद्र थे, जो आजीविका और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं का समर्थन करते थे।

2. **उपनिवेशीकरण के कारण उद्योग का पतन**

   ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों, जैसे सस्ते ब्रिटिश मिल के कपड़े का आयात और भारतीय बुनकरों पर भारी कर, ने भारत में औद्योगिक ह्रास को जन्म दिया। बंगाल और तमिलनाडु जैसे पारंपरिक केंद्रों में व्यापक बेरोज़गारी फैल गई और घरेलू तथा निर्यात बाज़ार सिकुड़ गए।

3. **मुंबई और अहमदाबाद में आधुनिक मिलों का उदय**

   19वीं सदी के मध्य में मुंबई (बंबई) और अहमदाबाद में पहली आधुनिक मिलें स्थापित हुईं। इसका कारण बंदरगाहों की निकटता, कपास उत्पादक क्षेत्रों की उपलब्धता और टाटा और लालभाई जैसे भारतीय उद्यमियों द्वारा पूँजी निवेश था।

4. **स्वतंत्रता पश्चात पुनरुद्धार और औद्योगिक विस्तार**

   1947 के बाद सरकार ने आधुनिक मिलों को प्रोत्साहित किया, जिससे रोज़गार सृजन और आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा मिला। छोटे पैमाने के उद्योगों के लिए वस्त्र आरक्षण जैसी नीतियों ने हथकरघा को संरक्षित करने का प्रयास किया, यद्यपि मिल क्षेत्र में ठहराव बना रहा।

5. **उदारीकरण और वैश्विक एकीकरण (1991 के बाद)**

   1991 के आर्थिक सुधारों के बाद वस्त्र उद्योग को विदेशी निवेश और वैश्विक बाज़ारों के लिए खोला गया। भारत कम लागत वाले श्रम और वैश्विक रिटेल श्रृंखलाओं के कारण सूत, कपड़े और परिधान का प्रमुख निर्यातक बनकर उभरा।

भारत में कपास वस्त्र उद्योग के भौगोलिक वितरण में परिवर्तन

1. **उपनिवेशिक युग में मुंबई और अहमदाबाद में एकाग्रता**

   ब्रिटिश शासन काल में वस्त्र उद्योग मुख्यतः पश्चिमी भारत जैसे मुंबई और अहमदाबाद में केंद्रित था, जो कपास आपूर्ति, बंदरगाह पहुँच और उद्यमशील पूँजी के कारण संभव हुआ। अहमदाबाद को "भारत का मैनचेस्टर" कहा गया।

2. **तमिलनाडु में विस्तार (कोयंबटूर, तिरुपुर)**

   स्वतंत्रता के बाद उद्योग तमिलनाडु तक फैला, जहाँ कोयंबटूर "दक्षिण भारत का मैनचेस्टर" के रूप में उभरा। तिरुपुर बुनाई और परिधान निर्यात केंद्र बना, जिसका श्रेय स्थानीय उद्यमिता और निर्यात प्रोत्साहनों को जाता है।

3. **पंजाब और हरियाणा में वृद्धि (लुधियाना, पानीपत)**

   लुधियाना और पानीपत ऊनी और सूती वस्त्रों के केंद्र बन गए, जहाँ निटवियर, होज़री और घरेलू वस्त्र तैयार किए जाते हैं। इनका निकटवर्ती उत्तर भारतीय बाज़ार और कुशल श्रम उपलब्धता ने इनके विकास में योगदान दिया।

4. **गुजरात का आधुनिक वस्त्र केंद्र के रूप में उदय**

   सूरत, राजकोट और वडोदरा जैसे शहर कृत्रिम वस्त्रों, रंगाई और छपाई के प्रमुख केंद्र बने। इससे गुजरात की वस्त्र विविधता कपास सूत से आगे बढ़ी।

5. **पूर्वोत्तर भारत का हथकरघा और जातीय वस्त्र**

   असम, मणिपुर और नागालैंड जैसे राज्य पारंपरिक हथकरघा परंपराओं को बनाए हुए हैं, जहाँ मूगा सिल्क जैसे जातीय वस्त्र उत्पादित होते हैं। सरकार की योजनाएँ इन क्षेत्रों को राष्ट्रीय और वैश्विक बाज़ारों में जोड़ने का प्रयास करती हैं।

6. **टेक्सटाइल पार्क और विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZs) का उद्भव**

   तमिलनाडु, गुजरात और महाराष्ट्र में सरकार द्वारा स्थापित मेगा टेक्सटाइल पार्क और SEZs ने उद्योग के स्थानिक पुनर्गठन में भूमिका निभाई है, जिससे क्लस्टर आधारित विकास और निर्यात उन्मुख उत्पादन को बल मिला है।

कपास वस्त्र उद्योग के पुनरुद्धार और सशक्तिकरण के लिए नीति उपाय

1. **तकनीक उन्नयन कोष योजना (TUFS)**

   यह योजना आधुनिक मशीनरी को अपनाने के लिए सब्सिडी युक्त ऋण प्रदान करती है, जिससे उत्पादकता और प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि होती है। इससे छोटे और मध्यम उद्यमों को ऊर्जा और जल खपत कम करते हुए आधुनिक तकनीक अपनाने में मदद मिलती है।

2. **एकीकृत वस्त्र पार्क योजना (SITP)**

   SITP क्लस्टर-आधारित बुनियादी ढाँचे को बढ़ावा देती है, जो सामान्य सुविधाएँ जैसे अपशिष्ट उपचार संयंत्र, परीक्षण प्रयोगशालाएँ और लॉजिस्टिक्स प्रदान करती है। तमिलनाडु और गुजरात में बने पार्कों ने निवेश आकर्षित कर रोज़गार सृजन को बल दिया है।

3. **संशोधित TUFS और RoSCTL**

   ATUF योजना मूल्य संवर्धन पर केंद्रित है, जबकि RoSCTL (राज्य और केंद्र करों व उपकरों की छूट) निर्यातकों को टैक्स रिफंड देकर वैश्विक बाज़ार में लागत प्रतिस्पर्धा में सहायता प्रदान करती है।

4. **कॉटन कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (CCI) मूल्य समर्थन**

   CCI किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य प्रदान करता है, जिससे कच्चे माल की आपूर्ति स्थिर रहती है। यह मूल्य की स्थिरता सुनिश्चित करता है और किसानों एवं उद्योग दोनों को लाभ पहुँचाता है।

5. **वस्त्रों के लिए उत्पादन आधारित प्रोत्साहन योजना (PLI)**

   PLI योजना मानव निर्मित रेशा (MMF) और तकनीकी वस्त्रों के निर्माण को बढ़ावा देती है, जिससे उत्पाद विविधीकरण, विदेशी निवेश आकर्षण और भारत की वैश्विक बाज़ार हिस्सेदारी में वृद्धि होती है।

6. **हथकरघा और खादी का संवर्धन**

   राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम और खादी विकास योजना जैसी योजनाएँ कारीगरों को समर्थन देती हैं, जिससे पारंपरिक बुनकरों को आधुनिक मूल्य श्रृंखलाओं में जोड़ा जा सके, साथ ही सांस्कृतिक विरासत और ग्रामीण रोज़गार को बढ़ावा मिले।

भारत का कपास वस्त्र उद्योग उपनिवेशीय शोषण से बचते हुए, स्वतंत्रता पश्चात पुनर्गठित हुआ और वैश्वीकरण के अनुरूप खुद को ढालने में सफल रहा है। नीतिगत समर्थन ने प्रतिस्पर्धात्मकता को पुनर्जीवित किया है, लेकिन तकनीक को अपनाने, सततता और कौशल विकास में चुनौतियाँ बनी हुई हैं। **क्लस्टरों को सशक्त बनाना, हरित विनिर्माण को बढ़ावा देना और कारीगरों को वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं से जोड़ना ही समावेशी और सतत विकास की कुंजी है।**

■■■■

NEXT IAS हिन्दी